http://www.jainkosh.org

परीक्षामुखसूत्रप्रवचन

(द्वादश भाग)

प्रवक्ता :

श्री १०५ क्षुल्लक मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द' जी महाराज

लोककी चेतन अचेतन पदार्थों और बहिरात्मावोंसे व्याप्तता—इस लोकमें दो जातिके पदार्थ हैं—कुछ चेतन जातिके पदार्थ हैं और कुछ अचेतन जातिके हैं। जहां ज्ञानदर्शन है, जानने देखनेकी शक्ति है, ऐसा पदार्थ भी लोकमें है और जिसमें जानने देखनेकी शक्ति कभी न हुई है, न है न होगी, ऐसे अचेतन पदार्थ भी लोकमें हैं। हम आप सभी लोग चेतन पदार्थकी जातिके हैं या अचेतन ? हम सब चेतन पदार्थकी जातिके हैं। चेतन पदार्थ तीन प्रकारके पाए जाते हैं—कोई है बहिरात्मा, कोई है अन्तरात्मा और कोई है परमात्मा। जिन जीवोंके शरीरमें आपा माननेकी बुद्धि है वे तो बहिरात्मा हैं। अपने आत्माके बाहरकी चीजें हैं उनको आत्मा मानना उसका नाम है बहिरात्मापन। शरीर आत्मासे बाहरकी चीज है। शरीरका सत्व अलग है और आत्माका सत्व अलग है। इन्द्रिय तथा मनका व्यापार बन्द करके अन्तरङ्गमें अपने आपके स्वका दर्शन किया जाय तो स्वयं मालूम पड़ेगा कि मैं चैतन्यात्मक पदार्थ शरीरसे न्यारा कोई स्वतन्त्र हूं। उस निज स्वतन्त्र आत्माको यह मैं हूं ऐसा समझता है उसे बहिरात्मा कहते हैं। और जो अपने इस ज्ञानस्वरूप अन्तस्तत्व में ही प्रतीति रखता है कि यह मैं हूं उसे अन्तरात्मा कहते हैं। अब देख लीजिए कि इस लोकमें बहिरात्माओंकी संख्या अधिक है या अन्तरात्माओंकी ? बहिरात्मा अधिक पाये जाते हैं। अज्ञानी मिथ्यादृष्टियोंसे भरा यह लोक है।

अन्तरात्मत्व और अपनी परखका कर्तव्य—इन बहिरात्माओंमेंसे जो कोई भी आत्मा कुछ कर्मोंका क्षयोपशम प्राप्त करके जब कुछ अपनी निर्मलतामें आता है और गुरुजनोंके उपदेशको पाकर जब अपने परिणामोंको सम्हालता है तो उसमें कुछ योग्यता बढ़ती है, वह अन्तरात्मामा बननेकी तरफ बढ़ने लगता है और जब परिणाम बहुत योग्य हो जाते हैं तो सम्यक्त्वका प्रकाश होता है। यों यह आत्मा बहिरात्मासे अन्तरात्मा बन जाता है। इस प्रसङ्गमें जरा कुछ अपनी भी परीक्षा करलें कि हम

http://sahjanandvarnishastra.org/

इनमेंसे किस लेनके हैं। हम अपने शरीरको ही सब कुछ समझ रहे हैं या शरीरसे न्यारा। मैं स्वतन्त्र कोई चैतन्यमात्र हूँ ऐसी कभी सुधि भी रखते हैं। यह तो अपनी निजकी बात है। यदि सोचनेपर यह निर्णय हो कि हमारी बाह्यमें अधिक दृष्टि रहती है, शरीरके सजानेमें, पोजीशन बनानेमें, अहंकार रखनेमें, शरीरके ही पोषणमें यदि अधिक समय गुजरता है तब तो यह खेदकी बात है, और इस बात पर कुछ खेद मानना चाहिए। ये सब तो विडम्बनाके कार्य हैं। बहुतसे लोग इस शरीरको ही बार-बार सजाया करते हैं बार बार आईना देखते हैं, यहां तक कि घरोंमें जगह जगह आईना गढ़वा देते हैं और शरीरके सजानेकी सामग्रियां रख देते हैं ताकि बार-बार अपना चेहरा देख सकें और खूब शृङ्गार कर सकें। शरीरको लोग बहुत-बहुत बार तेल फुलेल, साबुन आदिक लगाकर साफ करते हैं। तो इस तरहकी सारी प्रकियां तो बेसुधीमें, अज्ञानतामें हो रही हैं। जो लोग आत्मज्ञानके रुचियां हैं उनके पास इन प्रक्रियाओंके करनेका अवकाश ही कहां है। इन प्रक्रियाओंमें तो ये अज्ञानी जन ही अपना उपयोग लगाते हैं। तो इस बहिरात्माके ही कारण ये जीव ८४ लाख योनियों में जन्म लेकर भटक रहे हैं। अब तो अपने इस मूढतापूर्ण रवैयेको बदलना चाहिए। आज मनुष्य भवमें हम आप हैं ऐसा पवित्र अवसर मिलना बड़ा दुर्लभ है। अब तो बाहिरी इन सारी बातोंसे हटकर निज ज्ञानके प्रकाशमें आना चाहिए।

अन्तरात्माओंका परम पदमें प्रथम विकास—जो जीव अपने इन तर्क वितर्क विचारिकके बलसे इस निज अन्तःस्वत्वकी ओर आते हैं उन्हें अन्तरात्मा कहते हैं। ये अन्तरात्मा गृहस्थ और मुनि दोनों हो सकते हैं। जब तक केवलज्ञान नहीं होता ऐसी ऊची श्रेणीमें चढ़े हुए मुनि भी अन्तरात्मा कहलाते हैं। जबसे सम्यक्त्वका प्रकाश होता है तबसे अन्तरात्मा कहलाता है। और जब इस जीवको अपनी साधनाके बलसे पूर्ण विशुद्ध निर्मल निरावरण ज्ञान प्रकट होता है तो उसे परमात्मा कहते हैं स्याद्वाददर्शनमें (उपासित) मूल मंत्र है णमोकार मंत्र। उसमें ५ विकासोंको नमस्कार किया है न कि किसी व्यक्तिको। देखिये! कितना निष्पक्ष मन्त्र है जिसमें कि किसी तीर्थङ्कर अथवा मुनिका नाम नहीं लिया गया किन्तु आत्माके ५ विकासोंकी बात कही गयी है। वे विकास ५ बताए गए हैं पर मूलतः ३ हैं वे विकास। साधु अरहंत और सिद्ध। साधु, आचार्य और उपाध्याय ये तीन रूप साधुके बताए गए हैं। सो वह एक साधुरूप ही विकास है और उन्हें ३ माने तब ये अरहंत सिद्ध मिलकर ५ कहे गए हैं। उन्हें अभेद करके यहां ३ विकासरूपमें देखिए। जब यह अन्तरात्मा ज्ञानी विरक्त गृहस्थ ज्ञानभावनाकी प्रचुर साधना कर लेता है तब यह उतना उत्सुक हो जाता है कि परिग्रहको सम्हालनेका उसे अब भाव नहीं रहता। किस परिग्रहको सम्हालूं? यदि इस धन वैभव तथा परिजनोंकी सम्हालके ही विकल्पोंमें बना रहूंगा तो यह वर्तमानमें तो मलिनता है ही लेकिन भविष्यकालमें भी हमें जन्म मरणका संस्कार दिलाने वाली यह मूढ़ता होगी। उससे विरक्त हो जाता है यह ज्ञानी, और

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उसे इतनी विरक्ति हो जाती है कि तन पर वस्त्रको सम्भाहलनेकी सुधि नही रहती है। उसे भी वह विडम्बना समझता है। जब यह संकल्पपूर्वक समस्त परिग्रहोंका त्याग करता है बस इसीका नाम है साधु। यही है अन्तरात्म परमेष्ठित्वमें प्रथम विकास।

परमपदके प्रथम विकासमें आये हुए आत्माकी चर्या—जो आत्माके स्वभावको साधे उसे साधु कहते हैं। आत्माका स्वभाव है ज्ञान, ज्ञान स्वभाव। जो उस ज्ञानस्वरूपकी साधना बनाए रहे, उसका परिज्ञान करता रहे, उसमें उपयोग जमाए रहे, उसमें ही स्थिर होनेका प्रयास रखे उसे साधु कहते हैं। इसीका दूसरा नाम है मुनि। जो अपने आत्मा के स्वभावका सदा मनन करता रहे, मानता रहे उसे मुनि कहते हैं। ये साधु २४ प्रकारके परिग्रहोंसें रहित होते हैं। गात्र मात्र ही उनका परिग्रह रह गया है। साधुजन इतने विरक्त होते हैं और स्वयंके आत्मामें अनुरक्त होते हैं कि वे आहार करनेको भी विडम्बना समझते हैं। करना नहीं चाहते आहार, पर मानो ज्ञान समझाता है कि अभी ऐसी स्थिति नहीं बनी है। अभी विकासकी उच्च अवस्था नहीं बनी है। यदि असमयमें ही मरण हो जायगा तो बहुतसे लाभके अवसर से चूक जायेंगे। अभी आत्मसंयमकी साधनाके लिए इस शरीरको आहार करना पड़ेगा, ऐसा उन्हें ज्ञान समझाता है और आहार करनेके लिए मानों पहुंचा पकड़कर उठाता है कि चलो आहार कर आवो। यों वे मुनि आहार करते हैं, पर उस आहारसे वे इतने विरक्त हैं कि आहार करनेको वे एक विडम्बना मात्र समझते है। केवल आत्मरमणमें ही उनका सारा समय जाता है। पहिले कभी ने मुनि भी बहिरात्मा थे, अपने आपकी सुधि खोए हुए थे। मायाजालमें अपने आपकी सुधि खोये हुए थे, मायाजालमें अपनेको फंसाए रहते थे। पर अब उस निम्नपदसे हटकर अपने आत्माकी सुधि बनाये रखनेके विकासमें आये हैं। तो इस विकासको नमस्कार किया है इस मंत्र में। जिस आत्माने अपना ऐसा विकास किया हो वही पूज्य है, किसीका नाम लेकर यहां नमस्कार नही किया गया।

अन्तरआत्माका परमपदमें परमात्मत्वरूप विकास—ऐसे ही साधु जब आत्माकी विशुद्ध साधनाके बलसे बहुत ऊंचे उठते हैं, रागद्वेषसे रहित होकर समता परिणाममें आकर निर्विकल्प समाधिमें रहकर जहां कि ज्ञानज्ञाताज्ञेय एक हो जाते हैं किसी भी परका विकल्प नहीं है निष्तरंग निर्विकल्प स्थिति बनती है तो उस आंतरिक परत तपश्चरणके प्रसादसे यथाख्यात चारित्र प्रकट होता है और घातक कर्मोंका विनाश होता है। पश्चात् वहीं एकत्ववितर्क अवीचार शुक्ल ध्यानके प्रतापसे, निर्विकल्प उच्च समाधिके प्रतापसे चारघातिया कर्म दूर हो जाते हैं उस समय अनन्तज्ञानदर्शन आनन्दशक्ति इस चतुष्टसे सम्पन्न हो जाते हैं वे आत्मा और वे अरहंत कहलाते हैं। अरहत कोई नाम नही है जैसा कि लोग रख लेते हैं। अरहंत देवको मेरा नमस्कार

http://sahjanandvarnishastra.org/

हो । अरहंत शब्दका अर्थ है पूज्य । एक अर्ह पूजायां धातु है उससे अरहंत शब्द बना है. उसका अर्थ है पूज्य । अब उस आत्माके अन्त:स्वरूपको देखिए —वह शरीरमें रह रहा है लेकिन कैसा विकासयुक्त है, जिसका ज्ञान समस्त लोकालोकका जाननहार है, जिसका आनन्द परम विशुद्ध आत्मीय आनन्द है, ऐसे अनन्त ज्ञान अनन्त आनन्दमें प्रवर्तने वाले आत्माको अरहंत कहते हैं ।

पूज्य आत्मविकासके वर्णनके समय अपनी भी निगरानी करनेका कर्तव्य इस प्रकरणको सुनकर साथ ही साथ अपनी ओर भी आते जाइये । यह विकास किसी अन्यकी ही कथनी नहीं है, ये स्वभाव मुझमें मौजूद हैं हम भी ऐसे हो सकते हैं । एक मार्ग मिलना है और चलना है । जैसे समुद्रकी भंवरमें फंसा हुआ जहाज जब कभी भंवरकी किसी ओरसे निकलनेका रास्ता पा जाता है तो बड़े वेगसे वह जहाज निकल जाता है ठीक इसी प्रकार हमारा उपयोग अभी इन बाह्य पदार्थोंमें फंसा हुआ है । पदार्थोंमें तो क्या फंसा है, इन बाहरी पदार्थोंके विकल्प जालमें फंसा कभी किसी पदार्थमें ज्ञान गया कभी किसी पदार्थमें, यों यह ज्ञान चक्कर लगा रहा है, डोल रहा है । इस ज्ञानको कभी मार्ग मिल जाय अर्थात् कभी अपने आपके स्वरूप की दिशा मिल जाय तो वह ऐसे वेगसे इस जालसे निकलता है और विशुद्ध ज्ञान प्रकाशमें आता है कि वह अनुभव करले कि बस यही मेरा स्वरूप है यही तत्व है । थोड़ा कुछ पुरुषार्थ करना होगा । आरम्भ दशामें मन नहीं लगता है चर्चामें, स्वरूपके स्मरणमें अपने आत्माकी बात सुननेमें और आत्माके मननमें, लेकिन ननिक भी रुचि हो, बस एक उत्साह भर बनाना है अपने आत्माके स्वरूपको समझनेका । देखिये बहुत दुर्लभतासे यह मनुष्य भव पाया है, अच्छी जाति, अच्छा कुल प्राप्त हुआ है । बहुतसे लोग अच्छे कुलमें उत्पन्न हुए हैं मगर बहकाने वाले गुरुजन मिलते हैं । बहकाने वाली कुछ पढ़ने सुननेको उपन्यासकी पुस्तकें मिलती हैं और वे इसी विह्वलतामें बने रहते हैं । एक आत्माकी यथार्थ कथनी मिलना बहुत दुर्लभ बात है । ऐसे अवसरसे भी लाभ नहीं उठाया जाता है तो यह बड़ी भूल होगी, सत्य शासनके उपदेशोंके समझनेकी बुद्धि पायी है, तिस पर भी यदि समझना नहीं चाहते तो समझ लीजिये कि कितने ये अमूल्य क्षण खोए जा रहे हैं । कुछ थोड़ासा उपयोग लगायें तो आत्म-शासनके वे सब मर्म जो वीतराग ऋषि साधुओंने लिखे हैं, बताये हैं वे कुछ समझमें आ सकेंगे । और, यही पढ़कर समझकर स्पष्टज्ञान बनेगा जिससे कि फिर इस ज्ञानकी ओर ही अपने उपयोगको बनाए रखनेमें तृप्ति होगी । तो ये साधुजन जब अरहत अवस्थामें आते हैं तो आत्माकी आंतरिक अवस्था सर्वज्ञताकी, वीतरागताकी और अनन्त आनन्दका अनुभव करनेकी होती है ।

प्रभुमुद्रासे उपदेशलाभ—सकल परमात्माकी हम स्थापना मूर्तिमें करते हैं और जिनेन्द्र मूर्तिके समक्ष हम उपासना किया करते हैं उस मूर्ति मुद्रामें हम यह तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

निरखें कि अहो ! कैसी शान्त मुद्रा है। उस समय मूर्तिको भूल जायें। मूर्तिके सामने खड़े होकर उस मूर्तिको निरखकर भी कुछ ऐसा साक्षात् ही मानो ये अरहतदेव विराजे हैं, इस तरहकी कुछ धारणा रखकर ऐसी कल्पना करके वहां निरखें और मूर्तिको भूल जायें और यही दृष्टिमें लें कि ये प्रभु कैसे ज्ञानमें ही अपने ज्ञानको मग्न किए हुए हैं, इनकी पलक रंच मात्र भी नहीं चलती। मानों साक्षात् अरहंत प्रभुका उपदेश मिल रहा है कि शांति चाहते हो तो सबकी ममता त्यागकर इस प्रकार अपने आपके स्वरूप में मग्न हो जाओ। यही तुम्हें शरण है अन्य कुछ शरण नहीं है। जहां जहाँ घूमते हो जिन जिनके निकट बैठते हो, जिसको तुम अपना हित मानकर अपनी शरण समझ कर अपने आपको सौंप देते हो वे कोई भी शरण नहीं है, इस प्रकारकी बातें उस मुद्रा को देखकर उपदेश पानेकी बात सोचें, और थोड़ा यहाँसे भी चित्त हटाकर साक्षात् अरहंतदेवकी ओर ले जायें जैसे आकाशमें समवशरण रचा हुआ है और वहाँ चतुर्मुख भगवान विराजमान हैं। चारों ओर सभा बैठी है। सभीको उनके दर्शन हो रहे हैं। देवदेवियाँ चारों ओरसे गानतान नृत्य करती हुई उल्लासपूर्वक आ रही हैं। मनुष्योंका ताँता लगा हुआ है, हाथी शेर सूकर बैल आदिक तिर्यञ्च भी उस सभामें बैठे हुए हैं उस वीतराग सर्वज्ञ प्रभूके दर्शन करनेकी धुनिमें। जरा उसकी आंतरिक अवस्था तो निरखो, अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्दमय है।

प्रभुके देहकी अवस्था—अब प्रभुकी थोड़ी बाहरी अवस्था भी देखो—प्रभु की नासादृष्टि जैसी है, पलक भी न गिरते हैं, न ऊंचे उठते हैं। ऐसी स्थिरताकी स्थिति जिनके शरीरमें अब कोई मलिनता नहीं रही, निर्दोष शरीर हो गया। यहां तक निर्दोष हो गया कि धातु उपधातु भी उनमें नहीं रहे, निगोद जीवोंका भी अब स्थान नहीं रहा। जब वे अरहंत भगवान अशुद्ध दशामें थे तब उनके ये सब बातें हुआ करती थीं—उनके धातु-उपधातु भी थीं, अनेक छोटे कीटाणु भी थे, अनन्त निगोद जीव भी थे। निगोद जीव उन्हें कहते हैं जो एक श्वांसमें १८ बार जन्म और मरण किया करते हैं। एक श्वांस उतना समय होता है जितना कि नाड़ीके एक बार उठने और गिरनेमें लगता है। तो ऐसे एक श्वांसमें १८ बार जन्म मरण करने वाले निगोदिया जीव भी उनके शरीरमें होते थे। पर जब इन साधुजनोंको यह अरहंत अवस्था प्राप्त हुई तो उस समय यह शरीर परमौदारिक (उत्कृष्ट) बन जाता है। जहाँ निगोद जीवोंका निवास नहीं, जिसका स्फटिक मणिकी तरह अन्तर्बाह्य दर्शन हो, जिनके शरीरकी छाया भी नहीं पड़ती। हम लोगोंके इन मलिन शरीरोंकी छाया पड़ती है, पर प्रभु होनेके बाद उस परम निर्मल औदारिक शरीरकी जो स्फटिक मणिकी तरह स्वच्छ पवित्र होता है उसकी छाया नहीं पड़ती। यहां भी तो काँचकी छाया नहीं पड़ती, काँचकी मूर्ति हो तो उसकी छाया नहीं पड़ती, क्योंकि वह स्वयं प्रकाशमय बन गया तो जिसका शरीर स्वयं प्रकाशमान है, स्फटिक मणिकी तरह स्वच्छ है, धातु उपधातुओंसे रहित है ऐसे परमौदारिक शरीरमें छाया भी नहीं पड़ती।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वे प्रभु कब तक उस शरीरसे सहित रहेंगे जब तक शेष अघातिया कर्म और हैं आत्मा के साथ।

सकल परमात्माके कबलाहारकी आशंका—अब इस प्रसङ्गमें एक शंकाकार यह शंका रख रहा है कि ऐसे अरहंत प्रभु जब इस शरीरमें करोड़ों और अरबों वर्षों तक रहते हैं तो आहार किये बिना तो शरीर टिकता नहीं है तो वे अरहंत प्रभु भी आहार लेते होंगे। इस आहारको कहते हैं कबलाहार। कबल मायने ग्रास। ग्रास लेकर मुखसे भोजन करनेको कबलाहार कहते हैं। ये अरहंत प्रभु भोजन तो करते ही हैं। यद्यपि जीवनमुक्त हो गए, ठीक है, पर उनका शरीर करोड़ों वर्षों तक भी रहता है। अर्थात् यदि किसी मनुष्यकी आयु अरबों वर्षकी है और वह ८-९ वर्षकी आयुमें अरहंत बन गया तो बाकी समय तो उस शरीरमें रहेगा। चरम शरीरीका अकाल मरण नहीं होता। अरहंत अवस्थामें यह नहीं होसकता कि जितनी आयु उनकी है उससे पहले मिट जाय। तब इतने वर्षों तक वह शरीर कबलाहार बिना टिक नहीं सकता सी शंकाकारकी शंका है।

प्रभुके कबलाहारकी मान्यतासे अनन्त आनन्दकी असिद्धि—उक्त शंका का उत्तर दिया जा रहा है कि यदि भगवानको भोजन करना माना जायगा। कबलाहार माना जायगा, कवलाहार माना जायगा तो फिर उनके अनन्त आनन्द नहीं माना जा सकता। क्योंकि भूख लगती है तो आकुलता होती है यही बात समस्त इन्द्रिय विषयोंमें है कोई भी इन्द्रिय विषय आकुलता बिना नहीं भोगा जाता है। तो प्रभु जो सर्वज्ञ है अनन्त आनन्दमय है जिसमें अनन्त चतुष्टय प्रकट हुआ है, ऐसे प्रभुके यदि कबलाहारकी बात लायी जाय तो फिर अनन्त आनन्दकी बात नहीं टिक सकती। यों समझिये कि जैसे हम आप मनुष्योंमें कोई नेता होता है उसका कुछ सम्मान हम आप लोगोंसे अधिक होता है तो वह भगवान उससे कुछ और बड़े नेता हो गए। फिर प्रभुता कहां रही? प्रभुता तो उसे कहते हैं कि जहां हम आप लोगोंसे विलक्षण उच्च विकास प्रकट हुआ है। यदि प्रभुमें कबलाहारकी बात मानी जाय तो फिर उनमें अनन्त आनन्दकी बात नहीं मानी जा सकती। यद्यपि बहुतसे लोग ऐसा मानते हैं कि प्रभुको किसीने भोजन कराया, मेवा खिलाया, किसीने बेर खिलाया, किसीने अपने खानेंमेंसे आधा बच गया तो प्रभुको खिला दिया। यों बड़ी भक्तिके समर्थनमें इस तरहकी बातें कही जाती हैं। लेकिन जरा सोचिये तो सही कि इस तरहसे जो खाए वह क्या उत्कृष्ट आत्मा है? वह कैसे सर्वज्ञ वीतराग और अनन्त आनन्दमय हो सकता है? प्रभु कहीं इस तरहसे भोजन किया करता है। अरे प्रभुका स्वरूप तो एक अनुपम है। वह प्रभु ज्ञानानन्दरसमें लीन रहा करता है। उनका शरीर कैसे टिका रहता है करोड़ों अरबों वर्षों तक इस बातका आगे वर्णन करेंगे। और यह विषय बहुत विस्तारके साथ बताया जायगा। एक उपयोगको उत्साहित करके हमें प्रभुके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

इस सम्बन्धमें इतनी जानकारी बनाना है कि आखिर क्या स्वरूप है और क्या बनाने में प्रभुकी प्रभुता समाप्त होती है। ऐसे उत्साहके साथ इस प्रकरणको सुनना है और यह सब सुबोध प्रकरण है। और अपने आपकी कहानीकी ही बात है। जब यह मैं बहिरात्मापनसे हटकर अन्तरात्मा होकर परमात्म अवस्थाको प्राप्त होऊंगा तो क्या स्थिति बनती है। यह अपनी ही कहानी है। ऐसा जानकर बड़ा सावधानीसे सुनना है।

भोजनमें सुखकी अनुकूलता होनेसे जीवनमुक्त प्रभुके कबलाहारकी पुन: आशंका शंकाकार कहता है कि भोजन करना तो सुखके अनुकूल है फिर भगवानके भोजनका निषेध क्यों करते हो? यदि भगवान भोजन करते हैं तो उससे उनका सुख और बढ़ा, उनके अनन्त सुखका अभाव कैसे हुआ? जब हम लोग भी भूखसे पीड़ित होते हैं और शक्ति क्षीण हो जाती है तो भोजन करनेपर सुख भी उत्पन्न होता है और शक्ति भी उत्पन्न होती है। तो भोजन तो सुख शक्ति ज्ञान सभी के अनुकूल है। तो भगवानके भोजन करनेकी बात निषिद्ध क्यों करते हो? सिद्धांत तो यह था कि प्रभु होनेपर, घातिक कर्मोंके नष्ट होनेपर अनन्त ज्ञानदर्शन सुख और शक्तिकी सिद्धि होती है। तब कबलाहारका निषेध इसीलिए तो किया जा रहा था कि भगवानके सुखमें कमी आ जायगी। आहार करनेसे जब हम लोगोंमें सुख देखा जाता है तो फिर भगवानके सुखका नाश कैसे होगा। यहां शंकाकारने अपनी बात रखी और सिद्ध करना चाहा कि भगवानके बराबर कबलाहार चलता है।

वीतराग अनन्तशक्तिसम्पन्न प्रभुके कवलाहारकी असंभवता – उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि हम लोगोंको जो सुखादिक होते हैं वे सब कादाचित्क हैं; कभी होते हैं कभी नहीं। होते हैं और मिट जाते हैं, इस कारण हम लोगोंके सुख विषयोंसे ही उत्पन्न हो सकते हैं। आत्माधीन शाश्वत प्रभुवत संसारी सुख संसारी जीवोंके नहीं हुआ करते हैं। भगवानका सुख यदि विषयोंसे उत्पन्न हुआ मान लिया जाय तो फिर उनके वह अनन्त सुख न रहेगा। जैसे जब भूख लगती है तो पेट पिचक जाता है। शक्ति भी कमजोर हो जाती है तभी तो भोजनकी प्रवृत्ति करते हैं। तो भगवानके यदि भूख लगी, पेट पिचका, कमजोरी आयी तो फिर अनन्तसुख अनन्त वीर्य आदिक कहां रहे? इससे कबलाहार माननेपर प्रभुके अनन्त चतुष्टय नहीं रह सकता है। और, फिर स्पष्ट सीधी बात यह है कि जब भगवान रागद्वेषसे रहित हो गये तो फिर उनका भोजन ग्रहण करनेका प्रयास कैसे हो सकता है? हम आप लोग जब भोजन करते हैं तो राग भी करते हैं और द्वेष भी। कोई बिना रागके तो भोजन नहीं करता? भोजन खूब कर चुके, खूब पेट भर गया और बादमें कोई लड्डू हलुवा आदिक लाकर रख दे तो उस खाने वालेको वे रुचते नहीं हैं, और परोसनेवाला अगर पहले तो वे लड्डू हलुवा आदिक न दे और पेट भर जाने पर देने लगे तो उस पर कुछ

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

रोषसा आ सकता है । तो भोजनका ग्रहण करना और छोड़ना ये तो राग और द्वेषका काम है । प्रभुमें जब राग और द्वेष ही नहीं रहे तो फिर उनमें कबलाहार करनेकी बात कहां सम्भव है ।

परम आदर्श अनन्त शक्त्यानन्दमय प्रभुके कबलाहारकी असंभवता—अनुमान बना लीजिए, हेतु सिद्ध कर लीजिये । केवली भगवान भोजन नहीं करते क्योंकि रागद्वेषका उनमें अभाव है तथा अनन्त शक्तिका सद्भाव है अन्यथा याने कबलाहार करे । तो रागद्वेष रहेंगे और अनन्त शक्ति न रहेगी फिर तो शक्ति क्षीण हो जायगी । इससे प्रभुका स्वरूप सही मानो वे ज्ञान और आनन्दमें निरन्तर लीन रहते हैं । तीन लोक तीन कालके समस्त ज्ञेयोंको जानकर भी समस्त पदार्थ उनके ज्ञानमें एक साथ झलक रहे हैं तिसपर भी वे तो अपने आत्मीय विशुद्ध आनन्दरसमें लीन रहा करते हैं । प्रभुका स्वरूप यही है । प्रभु तो आदर्श है. उत्कृष्ट है । भगवानकी तो उपासना की जाती है । भगवान परम उपास्य तत्त्व है, और उसको देखें इस तरह कि लो अब तो प्रभु खाने पीने चले, अब खा चुके, अब वापिस आ गये । इस तरह प्रभुको देखने पर तो वे प्रभु परम उपासनाके विषयभूत नहीं रह सकते । प्रभुके कबलाहार नहीं है । श्वेतांबर आदिक अनेक लोग प्रभुको भोजन आदिक करने वाला मानते हैं। क्यों ? यह बात समझे बिना कि शरीरकी स्थिति जुदे जुदे प्रकारसे जीवोंकी रहा करती है । सबको एक नापसे नापना ठीक नहीं । अगर हम आप भोजन किये बिना रह नहीं पाते तो प्रभु भी भोजन किये बिना रह नहीं सकता ऐसा कहना ठीक नहीं देखो मुर्गी आदिक पक्षियोंके अंडेमें जो जीव है वह कई दिनों तक जिंदा रहता है, उसे कौन भोजन देता है अथवा देवोंकी सागरों पर्यन्तकी आयु होती है वे कहाँ भोजन किया करते हैं, पर बने रहते हैं । तो जीवोंके शरीरकी स्थितियां भिन्न भिन्न ढंगसे रहा करती हैं । भगवान केवलीके शरीरकी स्थिति देखिए – पवित्र शरीर वर्गणायें निरन्तर आती रहती हैं, उनसे रहा करते हैं । हम भी इस समय भोजन नहीं कर रहे मगर आहार निरन्तर कर रहे हैं । भोजन और आहारमें अन्तर है । भोजन तो है खानेका नाम और आहार है शरीरके किसी भी हिस्सेसे शरीरके परमाणुओंको ग्रहण करनेका नाम । जैसे ये पेड़ खड़े हैं तो ये भोजन नहीं करते किन्तु अपनी जड़ोंसे जल, खाद आदिक खींचकर आहार किया करते हैं जिससे वे बने रहा करते हैं । तो कबलाहारकी बात भगवानमें निषिद्ध है, वे भोजन नहीं करते किन्तु पवित्र आहारवर्गणाओं का सर्वाङ्गसे आहार करते हैं और बने रहा करते हैं । अच्छा यही बतावो कि जब भगवान वीतराग हो गये, सर्वज्ञ हो गए तो फिर ऐसा रागद्वेषका काम क्यों करेंगे ?

वीतरागतामें भी भोजनकी संभावनाकी शंका और समाधान—शंकाकार कहता है कि रागद्वेष न रहने पर भी बहुतसे यही जन भोजन करते हुए देखे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जाते हैं। इसी प्रकारसे वे भगवान भी वीतराग हो गए तो बने रहें वीतराग और भोजन भी करते रहें, इसमें कौनसी आपत्ति आती है ? अब उत्तर देते हैं कि जिन साधुओंको आपने दृष्टांतमें रखा कि भोजन भी करते हैं साधुजन और रागद्वेष भी नहीं रहता है तो यह दृष्टांत यों अयुक्त है कि बिना रागद्वेषके हुए उनमें भोजन करनेकी वृत्ति नहीं हो सकती। वे साधुजन रागद्वेषसे सर्वथा रहित नहीं है क्योंकि जब साधुजन भोजन करते हैं तो उन्हें प्रमत्तगुण थानमें माना जाता है। १४ गुणस्थानोंमें ५ गुणस्थान तक श्रावकव्रती सम्यकदृष्टि गृहस्थ भी होते हैं, और अविरत सम्यग्दृष्टि श्रावक हैं तो वह चतुर्थ गुणस्थानमें है और अगर सम्यक्त्व नहीं है तो उसमें पहिलेसे तीसरा गुणस्थान तक सम्भव है। पर मुनिके छठा गुणस्थान और उसके ऊपरके गुण स्थान होते हैं। तो छठे गुणस्थानको कहते हैं प्रमतविरत। इस गुणस्थानमें वह मुनि प्रमादपूर्वक अपनी वृत्ति करता है। तो ऐसे आहार करने वाले साधुजन भले हां श्रावकों से उत्कृष्ट आचरण वाले हैं, उनमें रागद्वेष बहुत कम है लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि उनमें पूर्ण वीतरागता है। वहां भी रागद्वेष सम्भव है इस कारण यह बात बिल्कुल सही है कि केवली भगवान भोजन नहीं करते क्योंकि उनमें रागद्वेषका अभाव है और अनन्त शक्तिका सद्भाव है। यदि प्रभुके कवलाहार मान लिया जाय तो वे प्रभु भी सरागी हो जायेंगे। सर्वत्र देख लो, जैसे मुसाफिर लोग, गृहस्थ लोग जब भोजन करते हैं तो क्या वे वीतराग हैं ? वीतराग तो नहीं हैं, इसी प्रकार यदि प्रभु में कवलाहारकी बात मान ली जायगी तो प्रभु भी सरागी हो जायेंगे।

भोजनमें रुचि अरुचिकी अनिवार्यता—भोजन करनेमें राग द्वेष किस तरह होते हैं सो भी देखो—प्रथम तो स्मरण और अभिलाषा इन दो भावोंके आये बिना कवलाहार नहीं लिया जाता। स्मरण तो चलता ही रहता है ना जैसे दाल खानेकी बात सोचते हैं, दूसरे जब खानेकी इच्छा हो, अभिलाषा हो तभी तो भोजन का ग्रास खानेके लिए उठाते हैं। तो प्रभु केवली यदि ग्रास लें, कवलाहार करें तो इस के मायने है कि उन्हें भोजनके स्वादका ख्याल आ गया और उसके खानेकी इच्छा हो गई। तो इस बातसे उनमें राग आ गया कि नहीं ? और खाते थे, खाते खाते खूब पेट भर गया, डटकर खा चुके तो तृप्त हो गये। अब तृप्त हो जानेके बाद फिर उस भोजनसे अरुचि हो गई और छोड़ दिया। भोजन करके तृप्त हो जानेके बाद फिर किसीने बढ़िया चीजें लाकर उपस्थित कर दिया तब तो उस परोसने वालेके ऊपर वे प्रभु रोष भी करने लगेंगे। तो राग और द्वेष इन दोनों बातोंके बिना कवलाहार सम्भव नहीं है।

प्रभुका अन्तर्बाह्य लक्षण—देखिए ! यह बात ऊपरी लक्षणकी कही जा रही है और इसमें भीतरी मर्म भी सम्बन्धित है। जो घातिया कर्मोंसे रहित हो गए, देव कहलाते हैं। शास्त्रोंकी प्रमाणता माननेमें जिनको एक मूल सर्वोत्कृष्ट प्रमाण

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

माना जाता है ऐसे भगवानका स्वरूप किस तरहका होना चाहिए जो हम लोगोंके हृदयमें ऐसी श्रद्धा बन सके कि यही प्रभु उत्कृष्ट देव हैं, उपासनीय हैं इनका वचन कभी असत्य नही हो सकता है। वह स्वरूप अनन्त चतुष्टयरूप है। वे प्रभु अनन्त ज्ञानके द्वारा समस्त विश्वको जानते रहते हैं और उस ही अनन्त ज्ञानके द्वारा अपने आत्माका अवलोकन करते रहते हैं, अनन्त आनन्दके द्वारा परम निराकुल रहा करते हैं और अनन्त शक्तिके द्वारा अटल आनन्द रसका पान किया करते हैं। तो प्रभु अनन्त चतुष्टयसे सम्पन्न है। प्रभुका ऐसा उत्कृष्ट स्वरूप मिट जायगा ऐसा सम्भव नही। इस ही चतुष्टयके प्रतापसे प्रभुने सर्वत: परमसमता प्राप्त की है। ऐसी ही शक्ति हम आपमें भी मौजूद है और ऐसी ही प्रभुता हम आप भी पा सकते हैं।

परसम्पर्कमें आकुलताओंके अनुभवन—यही देख लीजिये एक मोटीसी बात—अपने आपपर जरा दृष्टि देकर सुनो—जो शरीरसे निराला रूप रस गंध स्पर्श आदिकसे रहित है, जानन देखन जिसका काम है उसको लक्ष्यमें लेकर सुनो! हम क्या करते हैं? ज्ञाता रहते हैं। वर्तमान हालतमें भी कल्पनायें कर लें, विकल्प बना लें, आकुलतायें भोग लें, सुख भोग लें, इतना ही तो हम आप कर पाते हैं। लेकिन जरा यह तो विचार करें कि ये सारे खटपट करना इस मुझ आत्माका काम है क्या? बाहरमें जिन जिनमें हम आप अपनी दृष्टि फंसा रहे हैं उनसे इस मुझ आत्माका कोई नाता रिश्ता है क्या? ये सब इस मुझ आत्माके कुछ बनकर रहेंगे क्या? अरे जब यह शरीर भी इस आत्माका नहीं है तो अन्य बाह्य पदार्थ तो इस आत्माके हो ही क्या सकते हैं लेकिन मिथ्या बुद्धि ऐसी लगी है कि बाह्य पदार्थोंमें जो कि इस जीवसे बिल्कुल भिन्न चीजें हैं उनमें आपा माना जा रहा है। आचार्य समझाते हैं—अरे! क्यों व्यर्थ इन बाह्य चीजोंमें आपा बुद्धि रख रहे हो? ये तुम्हारे कुछ भी नही हैं लेकिन कोई सुनता ही नही उन आचार्योंकी बात। कैसे नही है ये मेरी चीजें? इन पर मेरा ही तो अधिकार है ऐसी मिथ्या बुद्धि रखकर निरन्तर आकुलतायें मचायी जा रही हैं। परिजनोंमें, इन धन वैभवोंमें इतना अधिक स्नेह करके उनमें अपनायतकी बुद्धि रखकर इतनी आकुलतायें मचायी जा रही हैं, जरा भी विश्राम नही ले सकते, यही सारा दुःखका कारण है।

प्रभुस्वरूपकी विपरीत मान्यतासे भक्तकी हानि—प्रभुके आंतरिक औपाधिक सारे झंझट हट गये और आत्मामें अतिशय प्रकट हो गया, सर्वज्ञता प्रकट हो गयी और इस ही कारण परमौदारिक शरीर हो गया, उत्कृष्ट निर्मल स्फटिक मणि की तरह स्वच्छ शरीर हो गया, हड्डी माँस मज्जा आदिक जिस शरीरमें नही रही, निर्मल, सुन्दर पवित्र शरीर हो गया यहाँ अन्तरंगमें तो अनन्त चतुष्टयका लाभ हो गया और बाहरमें शरीर भी पवित्र हो गया, ऐसे प्रभु दर्शनीय हैं। उनके गुणोंका स्मरण करें और अपने आत्माको पवित्र करें। अब कदाचित वे प्रभु भोजन करने चले

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जायें और उपासक बैठो है उनकी उपासना करनेके लिए तब तो उपासकके दिलमें एक ठेस पहुँचेगी। उन प्रभुमें अनन्त शक्ति होनेके कारण उनमें कभी भोजन करनेकी वृत्ति नहीं होती। बात तो छोटी सी कही जा रही है—कोई कहता है कि प्रभु भोजन करते हैं कोई कहता कि प्रभु भोजन नहीं करते, और कोई यह कहने लगे कि भोजन करते मान लो तो क्या, न करते मान लो तो क्या ? क्यों झगड़ते हो ? प्रभु तो प्रभु ही है। अरे प्रभु यथा तथा वृत्तिमें प्रभु कैसे रह सकता है। इसका निर्णय किए बिना प्रभुकी प्रभुता नहीं रह सकती। यह भी कोई साधारण विषय नहीं है। निर्णय करना होगा कि प्रभु तो उपेक्षा की मूर्ति है, वीतरागताकी मूर्ति है। अतएव प्रभुके निकट ठहरनेसे उनको दृष्टिमें लेनेसे शान्ति मिलती है।

शान्तिका उपाय रागद्वेषका अभाव और कृतार्थताका अनुभव - शांतिका उपाय रागद्वेषको मिटाना है। किसी भी प्रकारका रागद्वेष रहते हुए शांतिकी आशा करना व्यर्थ है। रागद्वेष रहित प्रभुको अपने चित्तमें लेनेसे यहाँ भी रागद्वेष मंद हो जाते हैं। आनन्द उसका मिलता है। विषयोंके भोगनेके समय भी जो सुख मिलता है वह विषयोंसे निकलकर नहीं मिलता किन्तु अपनेमें जो दुःखकी कल्पना कर रखी थी, सो विषय भोगनेके प्रसङ्गमें जितने अंशमें वे दुखकी कल्पनायें मिटीं उतने अंशमें यह सुखका अनुभव करता है। शान्ति मिलती है रागद्वेषके हटनेसे। शान्ति मिलती है अपनेको कृतकृत्य अनुभव करनेमे। किसी भी प्रसङ्गमें देख लो। कोई काम करनेको पड़ा है, कोई छोटी कोठी बनानी है तो जब तक वह नहीं बन पाती तब तक कितनी विह्वलता बनी रहती है। कितनी अशान्तिकी बातें, कितने झगड़े झंझटकी बातें, कितनी व्यवस्था सम्बन्धी बातें रहा करती हैं और उस कोठीके बन जानेपर वह कल्पित मालिक शान्तिका अनुभव करता है। वह शान्ति उस कोठीसे निकलकर तो नहीं आयीं। उस कोठीके बननेके कारण नहीं आयी, किन्तु अब जो यह भाव बैठ गया कि कोठी बनवानेका काम अब नहीं रहा, इस भावसे शान्ति है, काम करनेसे नहीं। खूब इस बातको गौरसे अनेक घटनाओंसे देखते जाइये—जब कभी भी किसी कामके प्रसङ्गमें शान्तिका अनुभव होता है तो अब यह काम मेरेको करनेको नहीं रहा। इस प्रकारके भावोंके कारण शान्तिका अनुभव होता है। कामसे शान्ति नहीं मिलती। भगवान तो पूर्ण कृतकृत्य हैं, उनको अब कुछ करनेको नहीं पड़ा, विकल्प भी नहीं रहा, वे तो एक निरन्तर स्वपरको समस्त विश्वके जाननहार रहा करते हैं। कैसा विशुद्ध ज्ञान होता है प्रभुका जिस ज्ञानके कारण आकुलताका रंचमात्र भी अवकाश नहीं है। जब कि यहाँ हम आप लोग इस तरहसे ज्ञान कर रहे हैं कि जिसमें आकुलतायें टपकती रहती हैं। एक आकुलता मिटी दूसरी आ गई। कैसा ज्ञान बना है। कोई पुरुष यह सोचे कि मैं इतने काम कर लूं। इसके बाद फिर मैं बड़ा सुखी हो जाऊंगा। फिर कोई झंझट ही न रहेगा। अरे झंझट कैसे न रहेगा। जब तक चित्त

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

में रागभाव है तब तक एक के बाद दूसरा काम और सामने आ जायगा। कहांसे निपटावा होगा।

कार्य कर करके निवृत्त होनेकी आशाकी विफलतापर एक किंवदन्ती के रूपमें दृष्टान्त - एक ऐसी किम्वदन्ती है कि एक बार नारदजी नरकलोकमें घूमने गये तो वहां उन्हें खड़े होने तककी भी जगह न मिली, वहांपर नारकी जीव ठसाठस भरे हुए थे। वहांसे झुंझलाकर नारदजी वैकुण्ठ गये। वहांपर सब जगह पड़ी थी। बस वहांके भगवान ही अकेले वहांपर पड़े हुए मौज कर रहे थे। तो नारदजी बोले —तुम बड़े पक्षपाती हो नरकमें तो इतने जीव भर दिये कि वहां खड़े होनेकी जगह नहीं। और इस वैकुण्ठमें एक भी जीव नहीं है। साराका सारा खाली पड़ा है। तो वह लौकिक भगवान बोला —अच्छा हम तुम्हें इस बातका अधिकार देते हैं कि तुम जितने जीव यहाँ ला सकते हो ले आओ ! वे नारदजी पास प्राप्त करके मध्यलोकमें आये, सो एक बूढ़ेसे कहा - चलो हम तुम्हें बैकुण्ठ ले चलें ! तो उस बूढ़ेने सुनकर नारदको गाली दी। हम ही मिले मरने मिटनेको, क्योंकि सभी जानते हैं कि बिना मरे तो बैकुण्ठ मिल नही सकता। नारदजीने ८-१० बूढ़ोंसे कहा मगर कोई भी बूढ़ा बैकुण्ठ चलनेको तैयार न हुआ। इसके बाद नारदजी जवानोंके पास गये और बोले चलो हम तुम्हें बैकुण्ठ ले चलें ! तो नवयुवक बोले—कि बात तो बहुत अच्छी है, यह तो हमारे कल्याणकी बात है, किन्तु महाराज ! अभी तो हम इस काममें फँसे हैं नहीं तो जरूर आपके साथ बैकुण्ठ चलते। अभी तो हम आपके संग बैकुण्ठ न जा सकेंगे ! ऐसा ही उत्तर सभी जवानोंने दिया। खैर, बूढ़ोंसे तो वे ठीक ही रहे। बूढ़ोंने तो नारदको गाली भी दी है, नवयुवकोंने तो नारदजीकी बातको अच्छा तो फिर भी कहा। वहाँसे भी हैरान होकर नारदजी लड़कोंके पास आये। एक लड़का चबूतरेपर बैठा हुआ माला फेर रहा था उससे नारदने कहा—बेटा ! तुम हमारे साथ चलो, हम तुम्हें बैकुण्ठ ले चलेंगे ! तो वह लड़का बड़ा खुश हुआ और साथ चल दिया। थोड़ी दूर जाकर बोला —महाराज ! दो दिन बादमें हमारी शादीकी तारीख है रिश्तेदार लोग भी आ चुके हैं, अब ऐसे मौकेपर बिना कहे सुने यों ही चल देना अच्छा नही मालूम होता। सो कृपा करके आप हमें ५ वर्षका समय दें। ५ वर्षके बादमें जब आप आयेंगे तो जरूर हम चलेंगे। ठीक है. नारदजी ५ वर्ष के बादमें पहुंचे और बोले -बेटा, अब तो चलो ! तो वह बोला—महाराज ! स्त्रीके गर्भ है, बच्चेका मुख तो देख लें, सो आप १० वर्षके बादमें आना तब हम जरूर चलेंगे। फिर १० वर्षके बादमें नारदजी पहुँचे। बोले - बेटा ! अब तो चलो। तो वह बोला—महाराज ! लड़का समर्थ हो जाय, अपने पैरों खड़ा हो जाय तब हम आपके साथ चलेंगे, सो आप १० वर्षके बादमें आना। फिर १० वर्षके बादमें पहुँचे नारदजी, तो वह बोला महाराज ! जरा नाती-पोतोंका मुख तो देख लें, सो आप १० वर्षके बादमें आना हम आपके साथ जरूर चलेंगे। फिर १० वर्षके बादमें नारद

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जी वहां पहुँचे। उस समय उसने कहा—महाराज ! लड़के कुपूत निकल गये, हमने बड़ा श्रम करके लाखोंकी सम्पत्ति जोड़ी है, इसकी रक्षा करने वाला कोई नहीं है। सो कृपा करके आप दूसरे भवमें आना तब हम आपके सङ्ग अवश्य चलेंगे। सो जिस कोठेमें अधिक धन भरा था उसीमें वह मरण करके सर्प बना, नारदजी वहाँ भी पहुंचे और बोले कि अब तो चलो। तो वह फना हिलाकर कहता है—महाराज ! धन की रक्षा करनेके लिए तो हम यहाँ आये हैं, हम तो इस धनको छोड़कर इस भवमें भी आपके साथ बैकुण्ठ नहीं जा सकते।

अभीसे शक्त्यनुरूप धर्म करनेमें जुटनेका अनुरोध—आप यह बतलावो कि कोई मनुष्य यह संकल्प करे कि मैं इतना काम कर लूं इसके बाद फिर निश्चिन्त होकर धर्म ही धर्म करूंगा, क्या बन जायगी बात ? भाई धर्म करनेके लिए समयको लम्बा न करो। जो जिस स्थितिमें है उसीके माफिक अपनी योग्यताके माफिक शक्तिको न छिपाकर ज्ञान ध्यान संयममें लगे। आगेकी कोई आशा करे कि मैं आगे अच्छा बनूंगा और इस समय तो लस्टम पस्टम जैसे हैं बने रहने दो। तो क्या यह उम्मीद की जा सकती है कि आगे अच्छे बन ही सकेंगे ? तो जिस मार्गसे चलकर ये प्रभु हुए हैं उसी मार्गको हम अपनी शक्ति न छिपाकर अपनायें और चलें तो कुछ ही समय बाद कुछ ही भवों बाद हम आप उस प्रभुताको पा सकते हैं।

वीतरागतान्यथानुपपत्तिसे सकलपरमात्माके कवलाहारका अभाव—अपने आपके आत्मामें शाश्वत विराजमान जो एक ज्ञान ज्योतिस्वरूप अंतस्तत्त्व है उसकी जिन साधुवोंने भावना की तद्रूप अपनेको अनुभव किया उनके उस परम तपश्चरणके प्रतापसे चार घातिया कर्म नष्ट हुए और अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त शक्ति प्रकट हुई। बाह्यमें शरीर भी परमोत्कृष्ट हो गया। ऐसे सशरीर परमात्मा सकल परमात्माके सम्बन्धमें शंकाकार यह कह रहा था कि उनका यह शरीर हजारों लाखों करोड़ों वर्षों तक भी जीता रहता है वह क्या भोजन किये बिना रह सकता है ? वे प्रभु भी भोजन किया करते हैं। उसके समाधानमें बताया गया कि प्रभु यदि आहार करने लग जायें तो उनमें अनन्त आनन्द व अनन्त शक्ति आदिक कैसे रह सकते हैं। जो कभी भी कवलाहार करता है, ग्रास खाता है वह स्मरण अभिलाषा आदिक पूर्वक खाता है। चाहे बड़े ऊंचे योगी साधु भी हों लेकिन जब भी उनकी प्रवृत्ति आहारके लिए होती है तो किसी न किसी रूपमें राग उनके भी रहता है। तो अन्य पुरुषोंकी भाँति जब भगवानमें भी अभिलाषा रुचि अरुचि आदिक सिद्ध होते हैं तो फिर उनमें वीतरागता कहां रही ? और वीतरागता नहीं है तो फिर आप्तपना कहां रहा ?

वीतरागताके स्मरणसे भक्तका लाभ—अनेक लौकिक लोग झट यों कह बैठते हैं कि जैन मन्दिरमें क्या रखा है ? वहां तो एक बिना श्रृङ्गार की, बिना कपड़ों

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

की, बिना आभूषणोंकी एक नग्नमूर्ति विराजमान है। वहां क्या लेंगे ? शृङ्गार और वस्त्र सहित भगवानकी मूर्तिमें मन रमाने वाले जैसे लोगोंको या स्वच्छंद जनोंको यह शंका हो सकती है, लेकिन उन्हें यह भी पता है कि जिस समुद्रमें पानी लबालब भरा है उसमेंसे कभी एक भी नदी निकली, और जिस पहाड़ पर पानीका एक बूंद भी नहीं दिखता उस पहाड़से नदियोंके स्रोत्र निकलते हैं। तो जहाँ धन वैभव पुत्र परिजन शृङ्गार आभूषण आदिक सब खटपट है वहाँसे तो कुछ मिलता भी नहीं है और जहां वीतरागता है वहां उस वीतरागमय प्रभुके स्मरण व उनकी भक्तिसे पुण्य रस बढ़ता है और स्वयंमेव सर्व सुख सुविधायें सर्व वैभव सर्वफल प्राप्त हो जाते हैं। जहाँ सरागताकी उपासनाकी जा रही है वहाँ लोगोंका पुण्यरस बदलकर पापरूपमें परिणत हो सकता है। और फिर उनसे पूछा जाए कि तुम क्या चाहते हो ? धन वैभव या लोकमें इज्जत पोजीशन विषयोंके सुख ? ये तो सब विडम्बनायें हैं जो कि जोवके साथ अनादिकालसे लगी हुई है इनसे कभी तृप्ति जीवको हो नहीं सकती। यह जीव हर भवमें जहाँ भी नई जगह जन्म लेता है वहां ही इस वैभवके अ आ इ ई से पाठ पढने लगता है। उसे यह दृष्टि नहीं रहती है कि इससे कई गुना वैभव तो मुझे पिछले भवों में प्राप्त हुआ था। उस वैभवके आगे तो यह कुछ भी नहीं है। इस प्रकारकी दृष्टि इस जीवकी नहीं बनती।

जीवनकी एकमात्र समस्या – भैया ! कुछ तो सोचिये इन विषयसुखोंसे इस जीवको लाभ क्या मिल जाता है, आखिर इस पर्यायके छूटनेके बाद भी तो कुछ हालत होगी। क्या यह ठेका ले रखा है कि इस पर्यायके बादमें उत्तरोत्तर हमें अच्छी ही पर्यायें प्राप्त होंगी। यह एक बहुत बड़ी समस्या है सामने जिसकी ओर लौकिक-जनोंकी दृष्टि ही नहीं जाती। लौकिक जनोंकी दृष्टि तो इस पर है कि हमारा ऐसा परिवार है ऐसा वैभव है, ऐसी इज्जत है आदिक। मगर बताओ तो सही कि मरण होनेके पश्चात् ये तुम्हारी कुछ मदद कर सकेंगे क्या ? अरे, मदद करना तो दूर रहा, इनके कारण सारा बिगाड़ ही बिगाड़ है। न जाने किन गतियोंमें जन्म लेना होगा। फिर तो निम्न गतियोंमें मन भी न मिलेगा, विषयकषायोंमें ही फसे रहना होगा। वहां तो अपने हितका पंथ ही न मिल सकेगा। यहाँ तो ज्ञान मिला है, श्रेष्ठ मन है। ऐसा विचार कर सकते हैं कि यह मैं आत्मा सर्वसे निराला ज्ञानपुञ्ज हूं। यदि मैं इस प्रकार का चिन्तवन करता रहूंगा तो इसी धर्म साधनाके प्रतापसे समस्त प्रकारके सुख साधन व कल्याणका मार्ग मिलता रहेगा। धर्म साधन करनेमें जीवका स्वयंका हित है, इसमें किसी पर एहसान लादनेकी बात नहीं है। खुदको विपत्तियोंसे बचानेके लिए धर्म साधना की जाती है। तो धर्म है अपने आत्माके सहज यथार्थस्वरूपका अनुभवन करना।

प्रभुताके कारण प्रभुमें अनेक अतिशय – धर्मके प्रतापसे जो घातिया कर्मों

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

का नाशकर प्रभु हुए हैं उनमें ऐसा अलौकिक अतिशय है कि वे ग्रासाहार नहीं करते और विशुद्ध शरीरवर्गणायें जो उनके शरीरमें चारों तरफसे आती हैं उनके बलपर हो वे बड़े सुन्दर जीवनसे जीते हैं। जब तक उनकी आयु है और आयु समाप्त होनेपर भी शरीररहित सिद्ध भगवान हो जाते हैं। उनके आहारकी अभिलाषा आदिककी बातें करना यह तो उनका अपमान करना है, उनके स्वरूपको बिगाड़ना है। यदि यह कहो कि भगवानके अभिलाषा तो नहीं है फिर भी वे आहार ग्रहण करते हैं क्योंकि प्रभु में इस ही प्रकारका महान अतिशय है कि उनके इच्छा नहीं है फिर भी खाते हैं, यह तो कोई भली बात नहीं है। यहां भी यदि किसी के खानेकी इच्छा न हो और जबर-दस्ती खिला दिया जाय तो उस पर क्या बीतती है। तो यही अतिशय मानलो कि प्रभु ग्रासाहारके बिना ही शुद्ध पवित्र वर्गणाओंके बलसे शरीरमें स्थित रहा करते हैं। ऐसे अतिशयशाली प्रभुमें अनन्त गुण हैं। एक यह भी गुण है कि वे प्रभु आकाशमें गमन करते हैं। जो भगवान हो जाते हैं, जिनमें प्रभुता अद्‌भुत हो जाती है वे हम आप लोगोंकी तरह जमीन पर चलते फिरते बोलते-चालते नजर न आयेंगे। प्रभु सभीको दर्शनमें तो आ सकते हैं पर उनसे बातचीत करने आदिका सम्पर्क कोई बना नहीं सकता है। वे प्रभु तो अपने अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्त शक्ति और अनन्त आनन्दसे सम्पन्न रहा करते हैं। उनके दर्शन और भव्य जीवोंके भाग्यसे और उनके वचनयोगसे जो दिव्य ध्वनि प्रकट होती है उसका श्रवण सभी लोग करते हैं। तो प्रभुका दर्शन एवं उनकी दिव्य ध्वनिका श्रवण ये दो लाभ जीवोंको प्राप्त हो सकते है पर उनसे कोई अपनी प्राइवेसी नहीं बना सकता है।

सदेह प्रभुमें आहारमात्रकी अप्रतिषिद्धता अब शंकाकार कहता है कि आहारके अभावमें तो प्रभुके शरीरकी स्थिति ही नहीं रह सकती। इसीको हेतुसे सिद्ध करते हैं कि भगवानके शरीरकी स्थिति ग्रासाहारपूर्वक होती है। शरीरके स्थित होनेमें जैसे हम लोगोंके शरीरकी स्थिति है, हम लोगोंका आहार किये बिना टिक नहीं सकता तो प्रभुका भी शरीर ही तो है और हम आप जैसा ही तो शरीर प्रभुका था उसकी भी स्थिति ग्रासाहारके बिना सम्भव नहीं है। इस शंकाके उत्तरमें पूछते हैं कि इस अनुमानसे क्या प्रभुमें यह सिद्ध करना चाहते कि उनके आहारमात्र होता रहता है या यह सिद्ध करना चाहते कि वे कौर खाकर ग्रास लेकर आहार किया करते हैं? यदि यह कहो कि हम तो आहारमात्र सिद्ध करना चाहते हैं। तो ठीक है, चूंकि वह देह है और वह टिका हुआ है स्थिर है तो आहार जरूर करते हैं यह तो सही बात है, आहारमात्रका निषेध नहीं है प्रथमगुणस्थानसे लेकर सयोग केवली पर्यंन्त अर्थात् १३वें गुणस्थानमें आहार रहता है यह तो मानते हैं पर प्रभुके कवला-हार नहीं रहता, अन्य प्रकारका आहार रहता है याने सदेह प्रभुमें नोकर्माहार रहता है। यहां भी हम आप बैठे हैं, कुछ खा पी नहीं रहे फिर भी यह न समझना चाहिए कि हम आहार नहीं कर रहे। अरे हमारे शरीरके प्रत्येक अंगमें पैरोंसे लेकर शिर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तक सभी जगहसे अनेक सूक्ष्म परमाणु आते रहते हैं। बुढ़ापेमें होता क्या है कि परमाणुओंका आना अधिक रहता है और बिखरना अधिक रहता है। जवानीमें क्या होता है कि परमाणुओंका आना अधिक रहता है और बिखरना कम रहता है। पर ये परमाणु आते बराबर हैं जब तक कि यह देह है।

षड्विध आहारका वर्णन आहार ६ प्रकारके होते हैं - एक तो नोकर्माहार, शरीरकी वर्गणाओंका आहार कितना ही आप कोट वगैरह पहिनकर बैठे हों, शरीरको पूरी तरह ढके हों फिर भी वे वर्गणायें इतनी सूक्ष्म हैं कि आपके कोट वगैरहको पार करके शरीरके अन्दर आती रहती हैं। तो शरीरकी वर्गणावोंका आते रहना यह है नोकर्माहार। दूसरा होता है कर्माहार। अर्थात् जीवमें कर्म आते रहते हैं। हम आपके नोकर्माहार भी चल रहा है और कर्माहार भी चल रहा है। तीसरा होता है कवलाहार। कवल संस्कृत शब्द है। इसे हिंदीमें कौर या ग्रास कहते हैं। तो ग्रास लेकर खानेको कवलाहार कहते हैं। यह भी हम आपमें कभी २ होता है। किसीका दिनमें एक बार किसीका २-३ अथवा ४ बार। चौथा होता है लेपाहार। जैसे वृक्षकी जड़ोंमें पानी अथवा खाद आदिका लेप हो जाता है उससे वे आहार ग्रहण करते हैं। तो यह हुआ लेपाहार। ५ वां आहार है ओजाहार। जैसे अंडेमें रहने वाले पक्षीके बच्चेको उसकी माँ अपनी छातीसे सेंक करती है उस छातीकी गर्मीसे वह नाखून जैसे कड़े अंडेके अन्दर बैठा हुआ बच्चा आहार ग्रहण करता है। तो यह हुआ ओजाहार। छठवाँ होता है मानसिक आहार। देवगतिके जीवोंको जब क्षुधा लगती है तो उनके मानसिक चिन्तन होता है, वे मनसे विचारते हैं और उन मानसिक विचारोंसे ही उनकी तृप्ति हो जाती है। लोग कहा करते हैं कि उनके कंठसे अमृत झरता है। जैसे हम आप लोग भी जब बड़े सुख चैनमें बैठे होते हैं, किसी प्रकारकी कोई चिंता नहीं होती है तो गलेमें से एक गुटका नीचे उतर आता है। वह बड़ा मीठा लगता है। इसका आप अनुभव भी कर सकते हैं। तो ऐसे ही समझिये कि जब उन देवोंको हजारों वर्षोंमें कभी क्षुधाकी वेदना महसूस होती है तो वे मानसिक चिंतन करते हैं और उनके कंठसे अमृत झड़ जाता है। यह हुआ मानसिक आहार। अब यहां जरूरी नहीं है कि जीवमें छहों प्रकारके आहार होने ही चाहियें तब देह टिका रहे। किसी जीवको किसी प्रकारका आहार है किसीका किसी प्रकार। तो नोकर्माहार नामक आहार इस शरीरकी स्थितिको बनाये रखता है।

अनाहारक अवस्था—अनाहारक जीव तो संसारमें या तो विग्रह गतिमें मिलेगा और ऊँची अवस्थामें केवली भगवान जब समुद्घात कर रहे हैं तब मिलेगा। अथवा १४ वें गुणस्थानमें मिलेगा। फिर संसारसे अतीत सिद्ध भगवान अनाहारक मिलेंगे। संसार अवस्थामें जब कोई जीव मरता है, एक शरीर छोड़कर दूसरे शरीरको ग्रहण करने जाता है और वह मोड़ा लेकर जाता है तो रास्तेमें उस जीवके अना-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हारकता है अर्थात् शरीर वर्गणाओंको वह जीव ग्रहण नहीं कर रहा है। देखिये ! एक यह ही विग्रह गतिकी स्थिति है इन ससारी जीवोंमें, जहां कि शरीर वर्गणायें नही आतीं किन्तु अंडेमें रहने वाला जीव जिसके ओजाहार होता है, उसके भी नोकर्माहार है, वे देव जिनके मानसिक आहार होता है उनके भी नोकर्माहार है। और ये वृक्ष जिनके लेप्याहार है उनके भी नोकर्माहार हैं जो कवलाहार करते हैं, ग्रास लेकर भोजन करते हैं उनके भी नोकर्माहार चल रहा है। केवल नोकर्माहार नही है, तो विग्रहगतिमें रहने वाले जीवोंके नोकर्माहार नही हैं।

विग्रहगतिमें अनाहारक अवस्थाका तीन समयसे अधिकका अनवसर—कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि जैसे मनुष्य मरा तो मरकर जब तक उसकी तेरहीं न हो जाय, जब तक १०, २०, ५० अविकारमन्य लोग अर्थात् खाने–पीने वाले लोग खा–पी न लें तब तक उस जीवको पथ नही मिलता और वह यत्र–तत्र डोलता रहता है, तो ऐसी बात नही है। एक भव छूटनेके बाद दूसरे भवमें उत्पन्न होनेमें नवीन शरीर ग्रहण करनेमें ज्यादहसे ज्यादह ४ समय लगते हैं। और, एक समय कितनेको कहते हैं ? आँखको एक पलकके शीघ्रतया एकबार गिरने व उठनेमें जितना समय लगता है उसमें अनगिनते समय होते हैं। तो उन अनगिनते समयोंमेंसे अधिकसे अधिक ४ समय लगेंगे जीवको नवीन शरीर ग्रहण करनेमें। जीवके गुजरनेके बाद अर्थात् एक भव छूटनेके बाद यह जीव ऊपरसे नीचे, पूरबसे पश्चिम, उत्तरसे दक्षिण ये जो आकाश पंक्तियां हैं उनके अनुसार जीव चलता है, विदिशाओंमें नही जाता है। जैसे यहां शरीरधारी लोग जैसा चाहे घूम सकते हैं वैसे यह जीव नही घूम सकता। उसकी तो शरीर छूटनेके बाद सीधी गति चलती है। चाहे पूरबसे पश्चिम, चाहे उत्तरसे दक्षिण और चाहे ऊपरसे नीचे। विदिशावोंमें उस जीवकी गति नही होती। यदि किसी जीवको सीधमें नवीन जन्म लेना है तो वह एक ही समयमें शरीर ग्रहण कर लेगा। किसीको जानेमें एक मोड़ लेना है जैसे पूरबके बीचसे तो वह मरा और दक्षिणके बीच कहीं पैदा होना है तो पहिले पश्चिमकी ओर चला, यों एक मोड़ लेनेमें उस जीवको नवीन शरीर धारण करनेमें दो समय लग जाते हैं। इसी प्रकार दो मोड़में तीन समय लग जाते और तीन मोड़में चार समय नवीन शरीरको ग्रहण करनेमें लग जाते हैं। ससारकी कोई भी जगह ऐसी नहीं है, कहींसे भी कहीं जीव पैदा हो उसे तीन मोड़से अधिक लेनेकी गुंजाइश नही है। तो जीवको नवीन शरीर ग्रहण करनेमें ४ समयसे अधिक नहीं लगते। तो नवीन शरीर ग्रहण करने और पुराने शरीरके छोड़नेके बीचके समयमें जीव अनाहारक रहता है,

नोकर्माहारसे प्रभुदेहकी स्थिति—प्रभु देहमें यदि नोकर्माहारकी बात कहते हो तो प्रभु आहारक हैं ऐसा कहनेमें कोई आपत्ति नही है। तो आहारमात्रकी बात सही है, पर कवलाहार होनेको ही आहारक कहा जाय यह बात युक्त नहीं है क्योंकि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

देवता भी तो कवलाहार नहीं करते। फिर भी तो उनके शरीरकी स्थिति सागरों-पर्यन्त रहा करती है। सागर किसे कहते हैं ? उसका प्रमाण जाननेके लिए गणित नहीं है। वह तो उपमासे ही जाना जा सकता है। कल्पना करो कि २ हजार कोसका लम्बा, चौड़ा, गहरा एक गड्ढा है और उसके अन्दर इतने छोटे-छोटे बालोंके टुकड़े भर दिये जायें कि जिनका कैंचीसे दूसरा टुकड़ा न जा सके और उस पर हाथी भी चला दिये जायें। जब खूब ठसाठस वह गड्ढा उन बालोंके टुकड़ोंसे भर जाय तो उन प्रत्येक टुकड़ोंको प्रति १०० वर्षमें निकाला जाय तो समस्त टुकड़ोंको निकालनेमें जितना समय लगेगा उसका नाम है व्यवहारपल्य, और इस व्यवहारपल्यका असंख्यात गुना होता है उद्धारपल्य और उस उद्धारपल्यका असंख्यात गुना होता है अद्धापल्य, और १ करोड़ अद्धापल्यमें १ करोड़ अद्धापल्यका गुणा किया जाये उसे कहते हैं एक कोड़ाकोड़ी पल्य, और ऐसे १० कोड़ाकोड़ी पल्य व्यतीत हों तो उसका नाम है एक सागर। ऐसे ३३ सागरों तक की आयु देवोंकी होती है और ३३ सागर तककी आयु नरकोंमें भी होती है। भला देवोंके शरीरकी इतने समय तक स्थिति रह जाय, जब यह सम्भव है ग्रासाहारके बिना तो प्रभुका यह परमौदारिक शरीर ग्रासाहारके बिना करोड़ों वर्षों तक रहे इसमें क्या आश्चर्य है ? उनके शरीरमें शरीर वर्गणाओंका आहार निरन्तर रहता है।

साधारण जनोंके देहसे प्रभु देहकी तुलनाकी उपहासता—यदि यह कहो कि हम देवताओंके शरीरकी बात नहीं कहते। हम तो यहाँ औदारिक शरीरकी स्थितिकी बात कहते हैं। जो जो औदारिक शरीरकी स्थिति है। औदारिक शरीर छोटे मोटे शरीरका नाम है जैसे मनुष्य और तिर्यञ्चोंके शरीर। तो औदारिक शरीर शरीरकी जितनी स्थिति है वह कवलाहारपूर्वक होती है। जैसे हम लोगोंके शरीरकी स्थिति औदारिक शरीरकी स्थिति है और वह खा पीकर रहता है। औदारिक शरीर की स्थिति भगवानके भी हैं। इससे देवताओंके शरीरका नाम लेकर भी हेतुमें दोष नहीं दे सकते हो। समाधान करते हैं कि यह भी बात सारहीन है। भगवानका औदारिक शरीर अब हम लोगों जैसा औदारिक शरीर नहीं रह गया, वह परमौदारिक शरीर हो गया। तो यहांके औदारिक शरीरकी स्थितिकी तुलना प्रभुके परमौदारिक शरीरकी स्थितिसे नहीं की जा सकती। प्रभुका वह परमौदारिक शरीर हम आप लोगोके शरीरकी स्थितिसे विलक्षण है तभी तो केवलज्ञान अवस्था होनेपर फिर केश नहीं बढ़ते। जैसे यहां हम आप लोगोंके बाल बढ़ते रहते हैं, कटवाने पड़ते हैं, अथवा साधुजन केशलोंच करते हैं, केश बढ़ा करते हैं, केवल ज्ञान होनेके बाद, सर्वज्ञ वीतराग प्रभु होनेके बाद जब तक उनका शरीर है वह पवित्र परमौदारिक शरीर है। उसमें केश नहीं बढ़ते। जितने केशोंको लिए हुएमें केवलज्ञान हो उतना ही रहता है। तो जैसे केश नख आदिकका न बढ़ना यह अतिशय केवलज्ञान होने पर है ऐसे ही भोजन का न होना यह भी एक अतिशय है, इसमें कोई विरोध नहीं है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भगवानके स्वाधीन आनन्दके स्मरणका सत्य आनन्द –भगवानका आनन्द तो अपने आपके स्वरूपानुभवनका आनन्द है और वह उनमें सहज होता है। जैसे अन्य द्रव्य धर्म, अधर्म, आकाश, काल आदिक अचेतन है, पर अचेतनकी तुलनामें बात नहीं कह रहे हैं। एक शुद्धकी तुलनामें कह रहे हैं। जैसे धर्म, अधर्म, आकाश आदिक द्रव्य शुद्ध द्रव्य हैं, इनका परिणमन जैसे विशुद्ध हैं, इनका परिणमन जैसे अपने स्वरूपमें चल रहा है इसी प्रकार सिद्ध प्रभुका भी अनुभवन परिणमन शुद्ध निरन्तर चलता है और अरहंत देवका भी इसीप्रकार शुद्ध अनुभवन चलता रहता है वे इस शुद्ध परिणमनसे निरन्तर आनन्दयुक्त रहा करते हैं। दुःख हो कोई तो प्रवृत्ति करें। विषयोंमें प्रवृत्ति दुःखके बिना नहीं हो सकती। छोटेसे लेकर बड़े तकके संसारी जीव भी जो भोजनकी प्रवृत्ति करटे हैं वे आकुलतापूर्वक ही करते हैं। प्रभुके तो किसी भी समय रंचमात्र भी आकुलता सम्भव नहीं है। मन्दिरमें जो अतु पाषाणकी मूर्ति है वह तो अरहंत भगवानकी मुद्राकी मूर्ति है। उसका दर्शन करके हमें केवल मूर्तिमें ही दृष्टि नहीं टिकाना है, किन्तु प्रभुकी उस मूर्तिको देखकर अपने चित्तको उन प्रभुके गुणों पर लगाना है और प्रभुके गुणोंका बार बार स्मरण करना है। उस प्रभुके सम्बन्धमें ही यहाँ यह चर्चा चल रही है कि प्रभुका आँतरिक स्वरूप क्या है और बाहरी स्वरूप क्या है ?

अल्पज्ञोंकी तुलना करके प्रभुके कवलाहार मानने पर इन्द्रियज ज्ञान का भी प्रसङ्ग होनेसे प्रभुताके भी अभावका प्रसङ्ग –जो लोग ऐसा कहते हैं कि सकल परमात्मा अरहंत भगवानके औदारिक शरीर ही तो है। सो औदारिक शरीरकी स्थिति, कवलाहारके बिना नहीं सम्भव है इस कारण वे ग्रासका आहार करते ही हैं ऐसा कहने वाले लोग यह भी सिद्ध न कर पायेंगे कि भगवानका प्रत्यक्ष ज्ञान अतीन्द्रिय होता है। जब उनके शरीरको अपने समान समझकर कवलाहार सिद्ध किया जा रहा है तो उनके ज्ञानको भी अपने ही ज्ञानके समान समझकर उसे इंद्रियज्ञ ज्ञान मानना पड़ेगा, अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं कहा जा सकता, क्योंकि ऐसा कहा जा सकता है कि भगवानका ज्ञान इन्द्रियजन्य हैं, यद्यपि प्रत्यक्ष ज्ञान शब्दसे भी कह लो। भगवानका प्रत्यक्ष ज्ञान इन्द्रिय जन्य होता है, प्रत्यक्ष होनेसे। जैसे हम लोगोंके प्रत्यक्षज्ञान। अपने धर्मसे। अपनी वर्तमान रवैयासे भगवानकी तुलना करके कवलाहार मानो तो फिर सभी बातोंकी तुलना करके भगवानकी सारी बातें अपने ही समान मान लो। हम आहार करते हैं तो भगवान भी आहार करते हैं ऐसा माननेपर मानते जाओ कि हमारा ज्ञान इन्द्रियजन्य है तो प्रभुका ज्ञान भी इंद्रियजन्य होगा। हम यहाँ सरागी हैं तो प्रभुभी सरागी होंगे। यों अनेक अटपट बातें अपनी तरह भगवानमें मान लोगे। हम चूंकि बोलने वाले हैं इसलिए रागसहित हैं, भगवान भी तो वक्ता हैं वे भी तो उपदेश करते हैं दिव्य ध्वनि द्वारा तो वे भी रागसहित हो गए। फिर तो भगवानकी भगवत्ता ही क्या रही सभी बातें अपनी जैसी भगवानमें मानलो।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रभुमें यहांकी तुलना और स्वेच्छाभिमतमें अनेक अनिष्ट प्रसङ्ग— शंकाकार कहता है कि हम लोगोंमें देखी गयी बातें, कुछ तो वहां हैं और कुछ नहीं हैं कहते हैं कि यह तो स्वेच्छाकारिताकी बात है। जो तुम्हारे सिद्धांतसे अनफिट बैठा उसे और तरहसे कहने लगे और जो बात तुम्हारे सिद्धान्तके अनुकूल बैठी उसे और तरहसे कहने लगे। अरे या तो सब बातें वही मानो या सब कुछ विलक्षण मानो। इस तरह जब भगवान रागी भी हो गए और इन्द्रियजन्य ज्ञानी भी हो गए तो वह केवली ही न रहे। भगवान ही न रहे। तो फिर किसमें कवलाहारकी सिद्धि करते हो? यहां हम आप लोगोंमेंसे किसी मनुष्यके प्रति कवलाहार सिद्ध करनेका प्रयास करता है क्या। क्योंकि सभी मनुष्य भोजन करते हैं। हम लोगोंकी तुलनासे उनके शरीरकी तुलना नहीं दी जा सकती। यहां है औदारिक शरीर जिसमें कि फोड़ा फुन्सी होते, बदबू निकलती, पसीना आदिक अनेक प्रकारके विकार हैं, पर प्रभुका शरीर तो परमौदारिक है, वहां किसी भी प्रकारका कोई विकार नहीं है। उनका शरीर स्फटिकमणिकी तरह स्वच्छ तथा हृष्टपुष्ट है। यदि हम लोगोंके शरीरकी स्थिति भोजनपूर्वक रहा करती है तो इसके मायने यह नहीं हैं कि सबके शरीरकी स्थितिको भोजनपूर्वक कहने लगोगे। अन्यथा तो जैसे घट पट चौकी आदिक पदार्थोंमें आकार पाया जानेसे यह सिद्ध हो रहा है यहाँ कि ये किसी एक बुद्धिमानके द्वारा उत्पन्न किए गए हैं। तो शरीर आदिकमें भी तो आकार हैं। किसीका कैसा ही आकार है किसीका कैसा तो ये सब शरीरको देखकर यहां भी यह मानना पड़ेगा कि ये भी किसी एक बुद्धिमानके द्वारा बनाये गए हैं। पर ऐसा तो तुम भी नहीं मानते। श्वेताम्बरोंके प्रति कह रहे हैं कि इसमें तो एक ही मत है कि यह जगत उपादान निमित्त पूर्वक बना है इसके बनाने वाला कोई एक बुद्धिमान नहीं है लेकिन जब यहाँ हम आप लोगोंके शरीरकी स्थिति भोजनपूर्वक देखकर भगवानके शरीरकी स्थितिको भी भोजनपूर्वक बनाना चाहते हो तो यहांके घड़ा आदिकका आकार देखकर इनकी रचना किसी कुम्हार आदिकसे होनेके कारण फिर इन शरीरोंका आकार देखकर इनकी रचना भी किसी एक बुद्धिमानके द्वारा रची गयी ऐसा मानना पड़ेगा। दूसरी बात— कभी कभी आंखमें विकारके कारण या आंख पर अंगुली आदिक रख देनेके कारण दो चन्द्रमा दिखने लगते हैं तो ये जो दो चन्द्रमा दिख रहे हैं वे निरालम्ब हैं या सालम्ब? तो कहते हैं कि वह तो निरालम्ब ज्ञान है। जो जाना जा रहा है वैसा वहां नहीं है। एक जगह निरालम्ब ज्ञान पाया गया तो फिर जितने ज्ञान हैं सबको निरालम्ब मान लो क्योंकि तुमने तो यह व्याप्ति बना रखी है कि हमारे शरीरकी स्थिति भोजनपूर्वक रहा करती है इसलिए प्रभुकी भी स्थिति भोजनपूर्वक है। एक जगह भोजनपूर्वक देहस्थिति होनेसे सर्वत्र देह स्थिति भोजनपूर्वक रहा करती हैं। यों माना सो ऐसे ही जब एक जगह निरालम्ब ज्ञान बन गया तो सभी जगह निरालम्ब ज्ञान मानलो। इस तरह यहाँसे तुलना करके प्रभुके देहको भोजनपूर्वक मानना ठीक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नहीं है। इसमें सबसे बड़ी आपत्ति तो यह आती है कि प्रभु फिर वीतराग सर्वज्ञ न ठहरेंगे। जो वीतराग है और सर्वज्ञ है उसकी कभी भी राग द्वेष भरी प्रवृत्ति नहीं हो सकते। भोजन करने जैसी बात रागद्वेषके बिना किसीके होती हो तो बताओ। कोई बड़े ऊंचे सन्यासी योगी भी हों तो भी उनके किसी न किसी अंशमें राग रहता है तभी उनकी भोजनमें प्रवृत्ति होती है।

अल्पज्ञदेहस्थितिके प्रकारका प्रभुदेहस्थितिमें अभाव—शकाकार कह रहा है एक उपालम्भ मिटानेके लिये कि जैसे ये पदार्थ घट पट आदिक किसी एक बुद्धिमानके द्वारा रचे हुए हैं उस प्रकारके ये शरीरादिक नहीं पाये जाते इसलिए इनको किसी बुद्धिमानपूर्वक नहीं कहा जा सकता। कहो कि यही बात तो यहाँ है। जैसे औदारिक शरीरकी स्थिति हम लोगोंको भोजनपूर्वक देखी जा रही है उस प्रकारकी स्थिति परमौदारिक शरीरकी नहीं हुआ करती हैं इसलिये प्रभुके देहकी स्थिति कवलाहारके बिना ही रहती है। और जैसे ज्ञान ज्ञान सब एक हैं दो चन्द्रमाओंका ज्ञान हो रहा तब भी ज्ञान है और यहां दरी चौकी आदिकका ज्ञान हो रहा वह भी ज्ञान है तो ज्ञानपनेकी समानता होनेपर भी दो चन्द्रमाओंका ज्ञान तो निरालम्ब है, पर यह दरी चौकी आदिकका ज्ञान तो सालम्ब है। इसी प्रकार शरीरकी स्थिति हमारे भी है और प्रभुके भी है। स्थितिकी समानता होनेपर भी हमारा शरीर भोजनपूर्वक स्थिर रहता है और प्रभुका देह निराहार रहकर भी स्थित रहता है। प्रभुके देहमें चारों ओरसे पवित्र शरीरवर्गणायें आती रहती हैं और उससे जीवन रहता है।

अल्पज्ञोंसे प्रभुकी बिलक्षणता एवं परमोपेक्षा—जो पुरुष आत्मसाधना करके एक अपनी अलौकिक दुनियाको अथवा आत्मस्वरूपको प्राप्त हो चुका है, जहां अब कोई विकल्प तरङ्ग नहीं उठ रहे हैं, ऐसा जो एक सकल परमात्मा है, उसका अंत: स्वरूप निरखिये तो सही, वह ज्ञानसमुद्र है शान्त है, क्षोभरहित है, कल्पनाओं का वहां अवकाश नहीं है। ऐसे परिपूर्ण केवल ज्ञानसे समृद्ध वह अनन्त आनन्दका निरन्तर अनुभवन करने वाला है, उसमें हम अन्य बात क्या घटा सकते हैं? उनके सामने उनके कुटुम्बी जन चाहे वियोगसे कितना ही रायें, दुखी हों, विषाद करें, पर वे वहां किसीकी नही सुनते। यों कह लीजिये कि वे पत्थरकी जैसी मूर्ति बन जाते हैं, उनके किसीसे स्नेह नही जगता। वे भगवान पत्थरकी तरह अचेतन पदार्थ तो नही हैं पर वहां ऐसी निष्कम्पता है कि उनके किसीसे भी रंच राग द्वेष नहीं हो सकता। उनकी तुलना अपने शरीरसे करके कवलाहारकी बात कहना युक्त नही। यदि कहो कि दूसरे प्रकारके औदारिक शरीर हो ही नही सकते। जैसा हमारा शरीर है वैसा हमारा शरीर है वैसा ही प्रभुका शरीर है, अन्य तरह हो ही नही सकता, याने क्या ऐसे भी लोग कहीं होंगे कि जो भोजन न करते हों, तो भगवान भी ऐसे कैसे हो सकते हैं कि वे आहार न करते हों। ऐसी अगर सम्भावना और कल्पना रखोगे तो फिर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कोई यों ही कह सकता है कि सर्वज्ञ भी कोई होता होगा क्या ? हम लोगोंमें तो कोई नहीं देखा जाता सर्वज्ञ ? सब अल्पज्ञ हैं, अधिक जाना तो क्या पर सबको तो नहीं जान सकते । कोई पुरुष ३ फिट ऊँचा कूद सकता है, कोई १० फिट ऊंचा कूद सकता है तो इसके मायने यह नही कि कोइ १० कोश ऊंचा भी कूद सकता है ! अरे, कोई अधिक जानकार बन गया पर उसकी सीमा तो है, ऐसा तो न हो जायगा कि कोई सारे विश्वको भी जाने ! तो यों सर्वज्ञपना सिद्ध नहो कर सकते । हम लोगों के शरीरसे ज्ञानसे, अनुभवनसे प्रभुके शरीर, ज्ञान, अनुभवन आदिमें विलक्षणता है।

ज्ञानघनआत्माकी परमशरणरूपता — जहाँ अपने आपके उस ज्ञानस्वरूपमें अपने उपयोगको डुबाकर एक रस कर दिया उसकी तुलना हम यहाँके मिथ्यादृष्टिजनो के रवैयेसे कर सकते हैं क्या ? देखिते एक दृष्टांत लें । खारा समुद्र जल है उस ही जलसे कोई जलांश एक नमककी डली बन गया अब नमककी डली बनकर चारों ओर घूम रही है, यहाँ वहाँ बिक रही है एक दूसरेके काम आ रही है और सुयोगसे वही नमककी डली किसीके हाथसे छूटकर या किसी प्रकार समुद्रमें गिर जाय तो वह नमक की डली घुलकर उस समुद्रमें एकरस हो जाती है । अब उसकी क्रिया, हलन चलन या वह पिण्डरूपता अब नहीं रही, वह तो सम हो गयी । यों ही निरखिये कि इस ज्ञान समुद्रमेंसे यह उपयोग डली जैसा बनकर बाहरमें निकलकर यत्र तत्र डोल रहा है, मोहमें पगा हुआ है । कौन ऐसा अनुभव करता कि जिस उपयोगवे मैं दुनियाके इन समस्त पदार्थोंको जानता हूं वह उपयोग क्या है ? मैं ही तो हूँ उपयोगमें तन्मय ही तो हूं, मैं कहां डोलता हूँ, मैं कहां अन्यत्र जाता हूँ । ऐसा अनुभव करनेवाला तो यहां कोई नही दिख रहा । जो दिख रहे उनका ज्ञान कभी यहां गया कभी वहाँ गया । कभीबम्बई गया तो कभी लड़के बच्चोंमें गया, तो कभी धन दौलतमें गया । यों यह उपयोग बाहरमें यत्र तत्र डोलता रहता है । अरे अपने उस उपयोगको ज्ञान समुद्रमें डुबो दो । मैं ज्ञानरूप ही तो हूँ, उस ज्ञानमयको ज्ञानकी ही विधिसे ज्ञानमयमें डुबो दो और अनुभव करने लगो कि बस मैं तो ज्ञानमय ही हूँ, इससे बाहर कहीं कुछ नहीं, इतना ही मात्र मैं हूँ । इसमें एकरस करके एक भावना करके कोई, जब उसे यहां भी अन्य विकल्प नही, अन्य आकुलता नही, तो भला इस महान पुरुषार्थके बलसे सदाके लिए निराकुल हो गए हैं ऐसे प्रभुमें अपनी तुलना करके उनके स्वरूपको बिगाड़ना कहां तक युक्त है ?

छद्मस्थ देहसे प्रभुदेहकी विलक्षणताका संक्षिप्त विश्लेषण — अब जाना ना कि हम जैसे पुरुष भगवान नही हैं । भगवान तो हमसे विलक्षण हैं । हम आप लोग तो अल्पज्ञ पर सर्वज्ञ हैं प्रभु । तो यहाँ भी मान लो कि हमारे शरीरकी स्थिति तो भोजनपूर्वक है, किन्तु उनके देहकी स्थिति बिना भोजनके पवित्र शरीरवर्गणाओंके आने जानेसे रहती है । प्रभुका वह देह सदा तो न रहेगा, जितनी आयु अभी शेष है

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उतने तक रहेगा। याने यहां कोई साधु पुरुष, अब पंचमकालमें तो नहीं होते प्रभु, लेकिन कल्पना करलो, चतुर्थकालमें सही, विदेह क्षेत्रमें तो अब भी प्रभु होते रहते हैं, तो कोई साधु पुरुष जो प्रभु बना वह हम आप जैसे मनुष्य ही तो थे, मनुष्यों जैसा ही तो आहार उनका था, मनुष्यों जैसे ही मल-मूत्र करते, पसीना भी आता, भोजन आदिक भी होते थे, ऐसे साधु पुरुष जब अपने अन्तःमें ज्ञानस्वरूप आत्माकी भावना करते हैं, अपने उपयोगको उस आत्मस्वरूपमें मग्न कर लेते हैं तो वहां कर्मोंका विध्वंस होने लगता है। तो चार घातियाकर्म जहाँ नष्ट हुए कि वे पुरुष सर्वज्ञ केवली भगवान बन जाते हैं। तो हो तो गये वे भगवान अरहंत पर अभी वह शरीर मौजूद है। मौजूद तो है वह शरीर किन्तु पवित्र परम उत्कृष्ट शरीर हो जाता है। जहाँ कि मल-मूत्र, रुधिर, पसीना आदिक धातुवें नहीं होती, जहाँ अनेक कीटाणु रहा करते थे वे भी अब उस शरीरमें नहीं रहे। जैसे तपश्चरणके माहात्म्यसे ये बात मानी जाती हैं कि प्रभुके देहमें अब मल नहीं है, प्रभुका मुख अब चारों ओरसे दिखता है ऐसे ही यह मानलो कि उनके भुक्तिका अभाव है।

प्रभुके अन्यअतिशयकी भाँति भुक्त्यभावमें भी देहस्थितिका अतिशय जब समवशरणमें प्रभु विराजमान होते हैं तो प्रभुकी सभा गोल लगती है चारों तरफ! जैसे आजकल वक्ताके आगे ही सभा बैठायी जाती है, पीछे लोग नहीं बैठते क्योंकि वक्ताके मुखकी ओर ही श्रोता जन बैठना पसन्द करते, ताकि वचनोंके घटबढ़से भी अर्थका स्पष्ट अवगम हो। इस तरह प्रभुकी सभामें सामने ही श्रोता बैठें सो बात नहीं। उनकी सभा चारों ओरसे लगती है। बारह सभायें होती हैं। तो प्रभुके तपश्चरणका ऐसा माहात्म्य है, उस प्रभुताका ऐसा अतिशय है कि चारों ओर उनका मुख दिखता है। जो पीठ पीछे बैठते हैं उन्हें भी मुख दिखता है और जो अगल बगल बैठते है उन्हें भी मुख दीखता है। किसीको भी बाधा नहीं आती। सभाके सभी श्रोता जन उपदेश सुनते हैं और भाव भरते रहते हैं और ऐसा चारों ओर मुख दिखना सम्भव भी है। जैसे स्फटिक मणिकी प्रतिमामें उनका मुख पीछेसे भी दिखता है, अगल-बगलसे भी। ऐसे ही यू कि प्रभुका देह भी स्फटिक मणिके समान स्वच्छ हो गया है, दूसरे उसमें देवकृत अतिशय हैं जिनके कारण उनका मुख चारों ओर दिखता रहता है। जैसे वहाँ तपश्चरणके प्रतापसे अनेक बातें मानी जाती हैं इसी प्रकार यहां भी मानलो कि बिना भोजनके उनके शरीरकी स्थिति रहती है इसमें क्या अपराध है?

देहस्थितिके विभिन्न आधार यहाँपर भी दिखता है कि कोई मनुष्य ४-५ बार खाकर अपने शरीरको स्थिर रख सकता है तो कोई मनुष्य १- बार खाकर ही अपने शरीरको ज्योंका त्यों स्थिर रखता है। और जो पुरुष अपने चित्तमे यह कल्पना कर लेते हैं कि बिना चार-पाँच बारके खाये शरीर टिका नहीं रह सकता तो उनका शरीर एक बार खानेपर वैसा न टिक सकेगा क्योंकि उन्होंने अपने चित्तमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

दुर्बलता पहिलेसे ही बसा ली । और, जिसने अपने मनमें यह बात बसा ली कि अरे, ४–५ बार खानेसे क्या प्रयोजन ! एक बार ही खानेमें शरीर ज्योंका त्यों बना रहता है, तो ऐसा सोंचने वाला व्यक्ति चूंकि पहिलेसे ही अपने दिलको मजबूत बना लेता है इसलिए एक बार खानेपर ही वह ज्योंका त्यों हृष्ट-पुष्ट बना रहता है । अभी दस-लक्षणी वगैरह पर्वके दिनोंमें बहुतसे लोग एकाशन किया करते हैं तो चूंकि वे पहिले से ही एकाशन करनेकी बात मनमें ठान लेते हैं इसलिए उन ८–१० दिनोंमें एकाशन करते रहनेपर भी उनका शरीर ज्योंका त्यों बना रहता है, पर ज्यों ही दशलाक्षणीका पर्व व्यतीत होता है त्यों ही वे अपने मनको ऐसा ढीला बना लेते हैं कि बिना ४–५ बार खाये रहा नही जाता है । गर्मीके दिनोंमें बहुतसे लोग चूंकि अपने मनको ढीला कर लेते हैं इसलिए वे बार बार बिना पानी पिये रह नही पाते । और, जिनका एक बार अन्न-जल ग्रहण करनेका नियम है उन्हें उन गर्मीके दिनोंमें भी कुछ परेशानी नही होती । हाँ, कभी थोड़ी वेदना हो सकती है, पर थोड़ी ही देरमें वह वेदना शांत हो जाती है । तो इस त्यागका आत्मबलके साथ भी सम्बन्ध है । देखो बाहुवलि स्वामी १ वर्ष तक खड़े रहकर तपस्या करते रहे, अन्न-जल कुछ भी नही ग्रहण किया, फिर भी उनके शरीरकी स्थिति विशिष्ट बनी रही । तब शरीरकी स्थितिमें आयु-कर्म प्रधान निमित्त है और भोजन आदिक तो सहायक मात्र हैं । शरीरका स्थित रहना भिन्न भिन्न योग्यताओंपर आधारित है । भगवानका शरीर स्थित रहता है और पुष्ट बना रहता है उसका कारण है कि चारघातिया कर्मोंमें जो अन्तराय कर्म है वह उनके नही रहा, उनके पवित्र शरीरमें पवित्र परमाणु आते–जाते रहते हैं जिसके कारण भगवानके शरीरकी स्थिति बनी रहती है ।

केवलज्ञान होनेपर देहकी दर्शनीयताका नियत अतिशय—कोई साधु यदि वृद्ध है दुबला-पतला है, हड्डियाँ निकली है, विरूप हो रहा है और उस साधुको निर्विकल्प समाधिके बलसे हो जाय केवल ज्ञान, भगवान बन जाय तो फिर वैसा शरीर न रहेगा जैसा कि साधु अवस्थामें था । केवलज्ञान होनेके बाद ही प्रभुका शरीर सुन्दर हृष्ट पुष्ट, युवावस्थासम्पन्न, दर्शनीय हो जाता है । यदि ऐसा न हो तो उसे देखकर लोग कहें कि वह देखो बूढ़े भगवान बैठे हैं, वह देखो विरूप भगवान बैठे हैं ! यों फिर उस भगवानके प्रति भक्तिका प्रवाह नही रह सकता । तो प्रभु होनेके बाद वह शरीर अत्यन्त पवित्र हो जाता है । तो अपनी अल्पज्ञ अवस्थासे प्रभुके कैवल्य की अवस्था से तुलना करके यदि प्रभुका भोजन मानते तो और भी बातें मानो । प्रभु के अब पलक भी नही गिरते, यत्र तत्र देखते भी नही, प्रभु वीतराग हैं, सर्वज्ञ हैं, उत्कृष्ट शरीरमें हैं, उनके ये भोजन आदिकके नटखट और पसीना आदिक, नख केशका बढ़ना आदिक ये सब चीजें अब प्रभुके उस शरीरमें नहीं रहते हैं । उनके आयुकर्मका अभी सद्भाव है इसलिये देहमें विराजे हैं । जब मनुष्य-आयु पूर्ण हो जायगी तो देहको छोड़कर सिद्ध बनेंगे । यों देव दो प्रकारके हैं अरहंत और सिद्ध अर्थात् सदेह परमात्मा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

और अदेह परमात्मा। जब तक किसी साधुके केवलज्ञान होनेके बाद शरीर बना रहता है तब तक है शरीर सहित परमात्मा और आयुकर्म पूरा होनेके बाद जब समस्त कर्म दूर हो जाते हैं, देहरहित हो जाता है ऐसे परमात्माको कहते हैं सिद्ध भगवान ! इस तरह दो तो देव हैं। णमोकार मंत्रमें जो ५ पद बताये हैं उनमेंसे देव और गुरु ये दो बताये हैं। अरहत और सिद्ध तो हैं देव और आचार्य उपाध्याय तथा साधु ये गुरु हैं।

प्रभुदेहस्थितिकी अल्पज्ञजनदेहस्थितिसे तुलनाका व्यामोह—शङ्काकार कहता है कि शरीरकी स्थिति भोजनके अभावमें कुछ माह तक रह जायगी या एक वर्ष तक रह जायगी पर सदाकाल तो नहीं रह सकती अर्थात् मरण पर्यन्त बहुत समय शेष हो तो स्थिति तो नहीं रह सकती। और जिन साधु संतोंने एक वर्ष तकके भी उपवास किये हों यदि वे और जीवित रहते हैं तो आखिर उन्हें भी तो बादमें भोजन करनेकी प्रवृत्ति करनी पड़ती है। अब इस शङ्काके समाधानमें पूछते हैं कि यह बात कैसे समझी जाय ? मरणपर्यन्त कवलाहार बिना देहकी स्थिति नहीं पायी जाती, इस कारण यह बात मानी जाय तो इस ही हेतुसे सर्वज्ञ वीतरागकी भी असिद्धि होगी। तो चाहा यह था कि सर्वज्ञकी सिद्धि हो और कवलाहारकी सिद्धि हो, पर सर्वज्ञका सिद्ध करना मुश्किल हो गया। यदि कहो कि सर्वज्ञ तो है क्योंकि सर्वज्ञताके ढांकने वाले रागादिक दोष हैं, ज्ञानावरण आदिक कर्म हैं तो उनमें हानिका अतिशय पाया जा रहा है कि किसीमें तो दोषावरणकी हानि कम है किसीमें और भी कम है और किसीमें बहुत ही कम है। तो इससे सिद्ध है कि किसी आत्मामें दोष और आवरण बिल्कुल भी नहीं है। इससे सिद्ध है कि वे भगवान होगये जीवन्मुक्त होगए, उनको किसी भी प्रकारकी इच्छा या वेदना नहीं होती है। वे तो अनन्त आनन्दमय हैं अतः प्रभुके देहकी तुलना हम आप अपने शरीरसे नहीं कर सकते।

वेदनीयोदयसे प्रभुके कवलाहारकी सिद्धिकी अशक्यता—अब यहाँ शङ्काकार कहता है कि वेदनीय कर्मके सद्भावसे तो भगवानके भोजनकी सिद्धि होती है। कर्म होते हैं ८ प्रकारके जिनमें अघातिया कर्मोंमें एक है वेदनीय कर्म। वेदनीय कर्मके उदयसे क्षुधा तृषा आदिककी अनेक बाधायें होती हैं। प्रभुमें तो चार घातियाकर्मोंका नाश हो गया है ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय आदिकका, किन्तु अभी ४ अघातिया कर्म तो हैं, वेदनीय कर्म भी हैं। वेदनीय कर्मके उदयसे साता भी होता है और असाता भी होता है। जब वेदनीयके ये साता और असाता दोनों उदय सम्भव हैं सकल परमात्माके तो वहां क्षुधावेदना भी है, उसका प्रतिकार है कवलाहार। तो कवलाहारकी प्रवृत्ति उस परमात्माके होती है। अनुमान बना लीजिये कि भगवानमें वेदनीय कर्म अपना फल देने वाले होते हैं। कर्म होनेसे आयुकर्मका उदय है तो शरीरमें स्थित बने रहते हैं। आयुकर्म अपना फल दे रहा है ना, इसी प्रकार वेदनीय कर्म भी मौजूद है तो वह भी अपना फल देगा। समाधानमें

http://sahjanandvarnishastra.org/

कहते हैं कि यह कहना युक्त नहीं इस अनुमानसे यदि तुम फल मात्र सिद्ध कर रहे हो तो ठीक है, होजाय सिद्ध, पर भोजनरूप फल सिद्ध करते हो तो यह सम्भव नही ! अब जो अघातिया कर्म शेष रह गये हैं वे इच्छासे सम्बन्ध रखकर जितना फल देने वाले हैं वे फल न देंगे और इच्छाके बिना जो फल हुआ करते हैं वे फल हो जायेंगे। तो वेदनीय कर्म इच्छाके बिना फल देनेमें समर्थ नही है। जैसे नामकर्मका उदय है, जिससे शरीरकी वर्गणायें बन रही हैं तो ये इच्छाके बिना सम्भव हैं। आयुकर्म इच्छाके बिना सम्भव है, पर भोजन पान करना आदिक तो इच्छाके बिना सम्भव नहीं है। इस कारण मोहनीयका अभाव होनेसे प्रभुको भूख प्यासकी वेदना व भुक्ति नही होती।

प्रभुके क्षुधानिमित्तक वेदनीयके उदयकी असिद्धि—यदि यह कहो कि क्षुधा वेदनाका कारणभूत वेदनीयका सद्भाव है इसलिए कवलाहार सिद्ध हैं तो यह पूछा जा रहा है कि क्षुधा आदिक वेदनाका कारणभूत वेदनीयका सद्भाव कैसे जाना है ? यदि यह कहो कि भूख प्यास देखे जाते हैं इससे सिद्ध है कि भूख प्यासकी वेदना का सद्भाव है तो इसमें अन्योन्याश्रित दोष हो गया। अगर भूख सिद्ध हो तो क्षुधाका निमित्तभूत वेदनीयका उदय सिद्ध हो और जब भगवानमें क्षुधानिमित्तक वेदनीय कर्मका सद्भाव सिद्ध हो तो क्षुधाफलकी सिद्धि हो और क्षुधाफलकी सिद्धि हो तो क्षुधानामक वेदनीय कर्मकी सिद्धि हो। प्रभुमें शरीरबाधा निमित्तिक वेदनीयका उदय नही है उनमें अब अनन्त आनन्द प्रकट हुआ है उनमें अब किसीभी प्रकारकी बाधा सम्भव नहीं है। यदि कहो कि असाता वेदनीयका उदय है इसलिए कवलाहार सिद्ध हो जायगा, असिद्ध नही। यह बात यों युक्त नहीं हैं कि जो वेदनीय कर्म रह गया है उसमें अब उतनी सामर्थ्य नहीं है।

मोहनीयके उदय बिना वेदनीयमें फलदानसामर्थ्यका अभाव– अष्टकर्मों के वशसे यह जीव पराधीन होता है ज्ञानावरणके उदयसे जीवका ज्ञान प्रकट नहीं हो पाता है जब ज्ञानावरणका क्षय हो जाता है तब केवलज्ञान प्रकट होता है जिससे समस्त लोकालोकका ज्ञान हो जाता है। यह प्रभुकी बात कही जा रही है। प्रभुमें ज्ञानावरण कर्म नहीं है। दर्शनावरण कर्मके उदयसे आत्माका दर्शन गुण प्रकट नहीं होता। अब प्रभुमें दर्शनावरणका क्षय हो गया है तो समस्द लोकालोकके पदार्थोंका जो ज्ञान हो रहा है, ऐसा ज्ञान करते हुए आत्माका दर्शन हो रहा जिससे दोनों बातें कह लीजिए कि समस्त लोकालोकका दर्शन हो रहा है और स्वका भी दर्शन हो रहा है। प्रभुमें मोहनीयकर्मका अभाव हो गया इसलिए उनमें ममता मिथ्यात्व क्षोभ रागद्वेष आदि नहीं रहे वे वीतराग हो गये। अन्तरायकर्मका क्षय होगया अतः वे अनन्त शक्तिमान सरल परमात्मा बन गया उनके आत्मामें जो अनन्तगुण प्रकट हुए हैं वे अब सदा प्रकट रहेंगे, उनमें अब कभी कमी न हो सकेगी। तो यों प्रभु अनन्त चतुष्टयमय हैं, किन्तु

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उनमें अभी ४ अघातिया कर्म मौजूद हैं वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र । तो गोत्रकर्मके उदयसे ये संहारी जीव प्रायः ऊंचनीच कुलमें रहते हैं, पर ये भगवान तो उच्चकुलमें ही रहते हैं गोत्रकर्मका फल अरहंत भगवानके चल रहा है। नामकर्मका फल भी चल रहा है क्योंकि शरीरकी स्थिति है । अंगोपांग आकार आदिक सब चल रहे हैं आयुकर्म आदिक का भी फल चल रहा है जिससे कि वे मनुष्यभवमें बराबर बने हुए हैं और वेदनीय का फल नही चल रहा है । उदयमें तो आ रहे हैं पर वे निष्फल होकर खिर जाते हैं । यह अतिशय प्रभुमें प्रकट हुआ है । इससे अघातिया कर्मोंका विपाक चल रहा है पर वेदनीय फल देनेमें सकर्थ इस कारण नही है कि वेदनीयमें फल देनेकी शक्ति मोहनीयके बलपर ही हो पाती है । अगर मोह हो इष्ट अनिष्टकी बुद्धि हो तो वह वेदनीय अपना फल दे, तो मोहनीयके न होनेसे वेदनीय अपना फल देनेमें असमर्थ रहता है । तो वेदनीय समर्थ नहीं रहता है इसलिए असाता वेदनीय अपना कार्य नहीं कर सकता

दृष्टान्तपूर्वक विकलसामर्थ्य वेदनीयमें बाधा न दे सकनेकी सिद्धि— जिसमें सामर्थ्य पूर्ण हो ऐसी ही असाता वेदनीय अपना कार्य कर सकता है । और यहां प्रभुमें जो वेदनीयकर्म मोजूद है उसकी सामर्थ्य नहीं रही क्योंकि मोहनीय कर्मका नाश हो गया । जैसे दृष्टान्त ले लीजिए कोई सेना यदि कहीं लड़ रही है और उस लड़ाईमें सेनानायक मारा गया तो फिर सैनिकोंमें लड़ने की सामर्थ्य नहीं रहती है इसी प्रकार मोहनीयकर्मके नष्ट होनेपर भगवानमें अघातिजा कर्मोंका सामर्थ्य नहीं रहा । जो अभी ३ अघातियाकर्म फल दे रहे हैं वे भी न कुछ जैसे हो गए तो मोहनीय कर्मके नष्ट होने से कोई भी कर्म अपना फल देनेमें समर्थ न रहा । जिन कर्मोंका फल रह गया वे पुद्गल विपाकी हैं, उनका जीवमें कुछ भी भार नही होता, जैसे मंत्रसे किसी विषेली चीजको निर्विष कर दिया जाय तो मत्रवादी उस मंत्रके बलसे उस चीजको खा भी रहा है, पर वह मूर्छित नहीं होता विषका उसपर कुछ असर नही रहता क्योंकि उस मत्रवादीने उस विषकी सामर्थ्यको मंत्रद्वारा खतम कर दिया है ठीक इसी प्रकार असाता वेदनीयका उदय चल रहा है पर मोहनीयके न होने पर उस असातामें सामर्थ्य न रही अतएव वह असाता अपना फल देनेमें समर्थ नही होपाता क्योंकि कार्य तो योग्य सामग्रीसे ही होता है ।

मोह बिना वेदनीयका फल न होनेके परिज्ञानसे प्राप्तव्य शिक्षा— वेदनीयको चाहिये मोहनीयकी सहायता तब उसका कार्य हो सकता है । इससे हम भी यही शिक्षा लें कि समस्त प्रकारके दुःख सुख मोह होने न होनेपर निर्भर हैं । जिसे जितना अधिक मोह है उसे उतना ही अधिक दुःख है । चाहे कोई बड़ा धनिक बन जाय विद्वान बन जाय, नेता बन जाय, बड़ा यशस्वी भी हो जाय पर यदि उसमें मोह है तो उसके फलमें उसे सर्वत्र दुःख ही दुःख प्राप्त होता रहेगा । मोह ज्यों ज्यों क्षीण होता जायगा त्यों त्यों दुःखकी मात्रामें कमी आती जायगी । यहां इष्टवियोग प्रायः सभीको

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

होता है क्योंकि मोहकी गंदगी सभीमें कुछ न कुछ लगी है, पर जरा सोचो तो सही कि जिन जिनका भी संयोग हुआ है उनका यदि वियोग नहीं होगा तो फिर वे सभी जीव इस धरती पर समायेंगे कैसे ? तो वियोग बिछोह तो सभीका होना ही है। अब जिसके जितना अधिक मोह होगा उसे उतना ही अधिक दुःखी होना पड़ेगा। कहीं ऐसा नही है कि पुत्र मरे तो इतना दुःख होगा और स्त्री मरे तो इतना दुःख होगा। अरे जिससे भी अधिक मोह होगा उसीके वियोगमें अधिक दुःख प्राप्त होगा, और जिससे मोहकी मात्रामें कमी होगी उसमें दुःखकी भी मात्रामें कमी रहेगी। इन बाहरी चीजों के संयोग वियोगसे दुःखका कोई माप नहीं है। यदि हम शान्त और सुखी रहना चाहते हैं तो हमें अपने जीवनमें विशुद्ध ज्ञानके धर्मके अर्जन का प्रयास करना चाहिये।

आत्महितकी वर्तमान स्ववशता—ज्ञानार्जनका सुख शान्तिका मार्ग अपने वश का है पर जिन जिन कार्योंमें इतने क्षोभ मचाये जारहे हैं वे कार्य अपने-वशके नहीं हैं। आज सभी लोग धनवैभवके पीछे बड़ी होड़ मचारहे हैं पर इस धनवैभवका आना क्या अपने वशकी बात है और आज जिनके पास जो धन है वह उनके पिछले भवोंमें किए गये शुभ कर्मोंका फल है आजके पुरुषार्थकी बात नहीं है। इसी प्रकार अनुकूल परिजनोंका मिलना भी आपके पुरुषार्थकी बात नहीं है यह तो आपकी पूर्वकृत करनीका परिणाम है। यह बात सम्भव है कि यदि आप सम्पदाके पीछे दौड़ लगायें तो सम्पदा आपसे दूर होती जाय और यदि सम्पदासे आप उपेक्षाका भाव रखें, उससे मूर्छाका परिणाम न रखें तो कहो सम्पदा आपके निकट आती जाय। तो किसी भी चीजके अनुरागमें आशक्तिमें मोहमें लाभ नहीं है बल्कि उनसे विरक्त रहनेमें लाभ है। जो सम्यग्दृष्टि चक्रवर्ती हुए हैं, जिनमें भरतका नाम मुख्यरूपसे लिया जाता है वे बहुत बड़ी सम्पत्तिके बीच रहकर भी पूर्ण विरक्त थे। तो रुचि होना चाहिये अपने स्वरूपके समझनेके लिए अपने ज्ञानके अर्जनके लिए बाहरी चीजोंके पीछे दौड़ लगानेसे तो कुछ भी लाभ न प्राप्त होगा।

नियमितता और संतुष्टिसे जीवनमें शान्ति—अभी ही निकटकालमें अनेक लोग ऐसे हो चुके हैं जिसका यह नियम था कि हम प्रतिदिन इतनेका ही सामान बेचकर, इतना ही लाभ लेकर, इतना ही खर्च करके अपना गुजारा चला ऊंगा। अपने जीवनका अधिकसे अधिक समय धर्मध्यानमें बिताऊंगा। आज तो खैर जमाना ही बदल गया। मंहगाईका जमाना है, लोगोंका इस तरहका काम करना जरा मुश्किलसा हो गया है, लेकिन कभी ऐसा जमाना था जब कि एक रुपयेका १ मन गेहूं मिलता था, एक रुपयेका ४ सेर घी मिलता था। ऐसे सस्ते जमानेकी बात है कि आगरामें पंडित बनारसीदास जी थे, उनका यह नियम था कि मैं प्रतिदिन १) का ही मुनाफा करके दुकान बन्द कर दूंगा। जैसे १६ पगड़ी बेचूंगा, प्रतिपगड़ी १ आना लाभ लूंगा। यों १) प्रतिदिन कमाऊंगा और फिर दुकान बन्द करके तीसरे पहर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तक मन्दिरमें रहूँगा और अपना अधिक समय धर्मध्यानमें बिताऊंगा। आखिर इस बातकी उनकी बड़ी प्रसिद्धि हो गई थी। राजाने भी जब बनारसीदासका ऐसा हाल सुना तो उसकी परीक्षा लेनेका विचार किया। एक दिन अपने ३२ सिपाहियोंको यह आदेश दिया कि बनारसीदासके यहांसे ३२ पगड़ी तुम सब ले आवो और यदि आज ही न लावोगे तो तुम सबको कठोर दण्ड दिया जायगा। आखिर वे सभी सिपाही बनारसीदासके यहां पगड़ी लेने गये। पगड़ी जब तक ८ बिक चुकी थी तो पगड़ी तो सबको दे दी पर लाभ प्रतिपगड़ी एक एक पैसा लिया। बादमें राजाने जांच की तो उसके विषयमें जो प्रसिद्धि थी वह सही निकली। आजके जमानेमें यदि ऐसी बात रखी जाय कि भाई! धन कमाते हो, पर थोड़ासा समय निकालकर मंदिरमें जाकर स्वाध्याय, पूजा पाठ आदि तो कर लिया करो, तो ऐसा करनेमें किसीका मन ही नहीं लगता। और चाहे गप्पोंमें सारा समय बितादें, बेकारके रागद्वेषादिकके कार्योंमें अपना समय चाहे गवां दें, पर आत्मसाधनाके कार्योंमें कुछ भी समय नहीं देना चाहते। यही कारण है कि आज सभी लोग दुखी नजर आ रहे हैं।

ज्ञान और विरक्तिसे क्लेशमुक्ति—ये जितने भी दुःख हैं सब रागद्वेष मोहादिक विकार भावोंपर निर्भर हैं। यदि समस्त दुःखोंसे छुटकारा प्राप्त करना है तो ज्ञानार्जन करनेका प्रयत्न करना चाहिए। इन पाये हुए समागमोंमें प्रीति करना योग्य नहीं, ये कोई भी समागम सदा न रहेंगे, सबका बिछोह अवश्य होगा। इन छोटे छोटे बच्चे लोगोंको भी जो समागम प्राप्त हैं उनको भी समागमोंका बिछोह उनके जीवन कालमें ही हो सकता है। यह जीवन बहुत थोड़ा है, इस अनन्तानन्त कालके सामने ये १००-५० वर्ष कुछ भी तो गिनती नहीं रखते। इतनी सी जिन्दगीको यदि मोह ममता में ही बिता दिया, उसीमें अपना मौज माना तो इस सारे जीवनके मोजकी कसर वियोगके समय १ ही घंटेमें निकल जायगी। सिद्धान्तमें बताया गया है कि एक क्षण का भी तीव्र मोह हो तो उससे ७० कोड़ा कोड़ी सागर तककी स्थितिके कर्म बंध जाते हैं। तब फिर अपने आपको सावधान रखना बड़ा आवश्यक है। अपने आपको सावधान न रखना बड़ा घातक है। अपने आपमें ऐसी योग्यता बनायें कि सबके बीच रहकर भी अलिप्त रहें। ज्यों जलमें भिन्न कमल है, उस तरहसे रहें। जैसे कमल जलमें ही पैदा होता, जलसे ही उसका जीवन चलता पर जलसे वह अतिदूर है तभी वह जिन्दा रहता है। अगर जलमें ही आ पड़े वह कमल तो सड़ जायगा। ठीक इसी तरह हम आप न जिससमागमोंमें उत्पन्न हुए वहीं रह रहे, उन्हींके बीच पल पुस रहे फिर भी उनसे दूर रहेंगे तो कमलकी तरह खिले और प्रसन्न रहेंगे और यदि उन समागमोंमें लगेंगे तो जलपतित कमलकी तरह सड़ जायेंगे, बरबाद हो जायेंगे।

प्रभुकी परमोपेक्षाका बाह्य रूप—ये प्रभु सर्वज्ञ परमात्मा हुए जिनकी उपासनामें बड़ बड़े योगीश्वर रत रहा करते हैं उन्होंने भी क्या किया? उन्होंने भेद

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

विज्ञान किया, समस्त परकी उपेक्षा की, अपने विशुद्ध ज्ञानप्रकाशको प्रकट किया, उत्कृष्ट पद प्राप्त किया। तो उन अरहंत भगवानने समस्त पर पदार्थोंकी पूर्ण उपेक्षा किया तभी तो ऐसा समवशरण मिलता है कि बड़े मूल्यवान रत्न हीरा जवाहिरात आदिकसे सजे सजाये बड़ी बड़ी शोभाओंसे परिपूर्ण समवशरणके बीचमें वे भगवान विराजे हैं गंधकुटीपर कमलपर लेकिन वे उससे ४ अंगुल ऊँचे विराजे हैं। इस लक्ष्मी का मन नहीं भरा। इस लक्ष्मीने बहुत चाहा कि मैं भगवानका स्पर्श करके अपनेको सुभग बनालूँ पर हुआ क्या कि ज्यों ज्यों यह लक्ष्मी भगवानके निकट आती गई त्यों त्यों भगवान अन्तरीक्ष होते गये। तब लक्ष्मीने क्या किया कि जब नीचेसे भगवानका स्पर्श न पाया तो ऊपरसे गिरना शुरु किया। सोचा कि अब तो मैं छू ही लूंगी भगवानको। तो तीन छत्रोंके रूपमें वह लक्ष्मी ऊपरसे गिरकर भगवानको छूना चाहती है फिर भी भगवानको छू न सकी।

आत्मजागृतके ज्ञानजागृतिमें अन्यकी अबाधकता – भैया ! सब बातें ज्ञानपर निर्भर हैं। बच्चेको गोदमें लेकर खिलाते हुए भी यह ज्ञान जगे कि यह भी कोई एक जीव है, कर्मशरीर और जीवका पिण्ड है, मुझसे भिन्न है, जैसे जगतके और सब जीव हैं वैसा ही यह भी है, मैं इससे निराला था निराला हूँ और निराला ही रहूँगा। ऐसा ज्ञान कोई जगाये तो कोई दूसरा इसमें बाधा डालता है क्या ? अरे बच्चेको गोदमें खिलाता हुआ भी उससे विरक्त रहा जा सकता है। बहुतसे लोग तो ऐसे होते हैं कि परदेशमें पड़े हैं पर अपने स्त्री पुत्रोंका ध्यान बना रहता है – अरे न जाने उनका क्या हाल होगा ? न जाने वे क्या कर रहे होंगे ? आदि। तो सब जीव हैं सभीसे अत्यन्त भिन्न, पर उनमें राग आशक्ति मोह बराबर बनाये रहते हैं। तो मैं भविष्यमें किस तरहसे रहूँ शान्त या अशान्त यह सब अपने ज्ञान और अज्ञानपर निर्भर है। यदि हमारा ध्यान, हमारा उपयोग निर्विकार आत्मस्वरूपकी ओर लग रहा है, उसका दर्शन अनेक बार होता है, उसकी धुनि बनी है तो हमें समझना चाहिये कि हम बहुत सुभवितव्य वाले हैं और यदि बाह्यमें राग ही चल रहा है तो समझो कि इसके फलमें हमें विडम्बनायें और विपत्तियाँ ही प्राप्त होंगी।

स्वप्नसम मायाकी असारता – किसीको जब स्वप्न आता है, स्वप्नमें वह बड़े बड़े वैभवके बीच भी अपनेको रहता हुआ देखता है तो जब तक वह स्वप्न देखता है, जब तक उसे सारी बातें सत्य प्रतीत होती रहती हैं। मैं ऐसे वैभव वाला हूँ, मेरी इतनी इज्जत है आदिक सभी बातें उसे सत्य दिखती हैं। कोई स्वप्नमें ही यदि सम्मान कर रहा है तो स्वप्न देखने वाला खुश होता है और यदि कोई अपमान करता है तो वह दुखी होता है। ये सारी बातें स्वप्नमें बिल्कुल सही दिखती हैं। पर क्या वह कुछ सही है ? अरे वह सब झूठ है। तो वह तो केवल दो चार दस मिनटका स्वप्न है जिसमें सब बातें सही प्रतीत होती हैं, यहां यह १०–२०–५० वर्षके जीवनका जो मोह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

की नींदका स्वप्न है वह भी बिल्कुल सच दीखता है—यही तो मेरा वैभव है, यही तो मेरा वैभव है, यही तो मेरे परिजन हैं, यही तो मेरा सब कुछ है आदि। पर ये सब बातें क्या वास्तवमें सच हैं? अरे! ये सब बातें झूठ हैं। क्योंकि जिस प्रकार स्वप्न देखने वाला जब जगता है तो उसे वहां स्वप्नमें दिखने वाली कोई भी चीज वहाँ नहीं दिखती तो समझ जाता है कि अरे वह सब झूठ था, इसी प्रकार मोह निद्राके भङ्ग होनेपर अर्थात् ज्ञान नेत्रके खुलनेपर यहांकी मोहकी निद्रामें दिखने वाली बातें बिल्कुल झूठ प्रतीत होने लगती हैं।

ज्ञानचक्षुके उन्मीलनका महत्त्व—ये सब बातें अपने ज्ञानपर निर्भर हैं। केवल वचन बोल लेनेसे ज्ञानकी आंख नहीं खुलती। वचन तो जैसे चाहे बोल लिए जा सकते हैं, वचन तो सोने वाला पुरुष भी बड़बड़ा लेता है पर जब तक अपने सहज ज्ञान स्वरूपका अनुभव नहीं जगता तब तक ज्ञानचक्षु नही खुलते। जब इस प्रकारका ज्ञान-चक्षु खुल जाता है तो फिर मोह निद्रामें दिखायी देने वाले स्वप्ने सब झूठे प्रतीत होने लगते हैं। अरे जिसे मैं अपना समझ रहा था, जिनके पीछे मैं बड़े बड़े पापकार्य भी किया करता था वे तो मेरे कुछ भी नहीं हैं। मैं व्यर्थ ही उन्हें अपना समझकर उनके पीछे हो रहा था। तो उस ज्ञान तत्वके जगनेपर वे सारी बातें स्वप्नवत् झूठ प्रतीत होने लगती हैं। ऐसा अपना तत्त्वज्ञान बना रहे तो इसमें कोई कष्टकी बात नहीं है। अरे मानो कुछ धन घट गया, किसी इष्टका वियोग हो गया, किसीने कहना न माना, तो इसमें कोनसे कष्टकी बात है। अरे उसे समझलो कि वह तो परमें परकी ही परकी जैसी परिणति हुई। मैं तो इन सबसे निराला ज्ञानमात्र आत्मतत्त्व हूँ। बस इतनी जानकारी बना लेना इसी सत्य बातको मानकर रह जाना यही समस्त प्रकारके कष्टोंके मेटनेका एकमात्र उपाय है। तो उन प्रभुने भी अपने दुःखोंको मेटनेके लिए इसी प्रकारका यथार्थ ज्ञान बनाया था बस उसी सत्य बातको मानकर उसी रूपमें अटलरूपसे रह गये थे जिन प्रभुकी उपासना में बड़े बड़े योगीन्द्र रहा करते हैं।

शुक्लध्यानके बलसे घातिया कर्मोंका विनाश होनेके कारण वेदनीयकी सामर्थ्यहीनता—समस्त क्लेशोंसे रहित अपने आपके आत्माके स्वभावका उपयोग रख कर जिसने स्वभावका विकास कर लिया है ऐसा सकल परमात्मा प्रभुके किसी भी प्रकार की वेदना नही होती। उनमें यद्यपि चार अघातियाकर्म शेष रह गये वेदनीय आयु नाम और गोत्र। उनमें चूंकि वेदनीय कर्म जीव विपाकी है इस कारण उसका सम्बन्ध मोहनीयकर्म से है। यदि मोहनीयकर्मका उदय है तो वेदनीय अपना फल दे सकता है, पर भगवानके मोहनीयकर्मका अभाव हो चुका, क्योंकि क्षपकश्रेणिमें उन्होंने शुक्लध्यान रूपी प्रचण्ड अग्निके बलसे घातियाकर्मोंको जला डाला।

आर्तध्यानका अप्रमत्त साधुवोंमें भी अभाव—ध्यान १६ प्रकारके होते हैं ४आर्तध्यान ४ रौद्रध्यान ४ धर्मध्यान और ४ शुक्लध्यान। चार आर्तध्यानोंमें एक है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इष्टवियोगज–किसी इष्टका वियोग हो जाय तो उसके मेल मिलाय वचनव्यवहार आदिके लिए जो चिन्तन चलता है उसे इष्टवियोगज आर्तध्यान कहते हैं यह दुःखमयी ध्यान है। दूसरा है अनिष्टसंयोगज किसी भी अनिष्ट पदार्थका संयोग हो जाय तो उसे हटानेके लिए जो ध्यान बनता है उसे अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान कहते हैं। यह भी दुःखमयी ध्यान है। तीसरा है वेदनाप्रभव शरीरमें कोई वेदना जगे, उसमें दुःख माने, उसके सम्बन्धमें कल्पनायें करे कि न जाने इस वेदनासे मेरा क्या हाल होगा। ऐसा चिन्तन करना सो वेदनाप्रभवध्यान है। यह भी दुःखमयी ध्यान है। चौथा है—निदान, निदान का अर्थ है आशायें रखना। इस भवमें मुझे यों मिले यों मिले और परभवमें मुझे यों मिले यों मिले आदि चिन्तन करना सो निदान नामक आर्तध्यान है। ये चार तो दुःख मयी ध्यान हैं। ये तो अप्रमत्त साधुओंके भी नहीं होते।

रौद्रध्यानका प्रमत्तविरत साधुवोंमें भी अभाव—अब रौद्रध्यान की बात सुनो रौद्रध्यान भी ४ प्रकारके हैं–हिंसानन्द, मृषानन्द, चौर्यानन्द और विषयसंरक्षणा नन्द। हिंसानन्द–हिंसामें आनन्द माने हिंसा करने वालेकी प्रशसा करे, उसे देखकर खुश हो तो यह हिंसानन्द रौद्रध्यान है। मृषानन्द - झूठ बोलनेमें व किसी को धोखा देने आदिमें आनन्द मानना सो मृषानन्द नामक रौद्रध्यान है। चौर्यानन्द—किसीकी चीज को चुरानेमें व किसीकी चोरीकी जानकारी होने आदिपर खुश होनेमें जो भी ध्यान बनता है वह चौर्यानन्द नामक रौद्रध्यान है। विषयसंरक्षणानन्द -विषयोंके साधनोंको पाकर उनमें मौज मानने सम्बन्धी जो ध्यान बनते हैं वे विषयसंरक्षणानन्द नामक रौद्रध्यान हैं, अब अपनी यह परीक्षा कर लेना चाहिये कि हम दुःख देने वाले ध्यानोंमें कितना रहते हैं, और इस रौद्रध्यानमें कितना रहते हैं और धर्मध्यानमें कितना रहते हैं विषयसंरक्षणानन्द नामक रौद्रध्यानका बहुत बड़ा विस्तार है। परिग्रहमें लालसा रखना, धन जोड़नेकी इच्छा रखना, धन देखकर खुश होना, बैलेन्स देखकर खुश होना, माल देखकर खुश होना, स्पर्शन इन्द्रियके साधनोंको देखकर खुश होना, अनेक प्रकार के रसीले स्वादिष्ट भोजन आदिक को पाकर खुश होना, आदिक ये सब विषयसंरक्षणा नन्द नामक रौद्रध्यान हैं। रौद्रध्यान तो प्रमत्तविरत साधुके भी नही होते। अब हम आप सभी लोग इस बातपर विचार करें कि हमारा २४ घंटेमें कितना समय इन आर्त और रौद्रध्यानोंमें व्यतीत होता हैं। विचार करनेपर यही पायेंगे कि थोड़े से धर्मध्यान के अतिरिक्त हमारा सारा समय आर्तध्यान और रौद्रध्यानमें व्यतीत होता है।

आज्ञाविचय, अपायविचय व विपाकविचय धर्मध्यान—अब धर्मध्यान की बात देखिये ! धर्मध्यान भी चार तरहके हैं—आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाक विचय और संस्थानविचय। आज्ञाविचय—भगवानकी आज्ञाको प्रधानता देते हुए, उसके प्रति श्रद्धा रखते हुए जो भी ध्यान बनते हैं वे आज्ञाविचयनामक धर्मध्यान हैं। अपायविचय– मेरे ये रागद्वेष मोहादिक कैसे दूर हों, मेरेमें जो ये गंदगियां भर गई

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हैं उनको किस प्रकारसे दूर करें, इस प्रकारका जो उपाय चिन्तन किया जता है उसे उपायविचय या अपायविचयनामक धर्मध्यान कहते हैं। विपाकविचय·—कर्मोंके फलके सम्बन्धमें विचारना—ये कर्म कैसे फल देते हैं इस जीवको, कर्मोंके फल देखो —बड़े बड़े पुरुष जैसे श्री रामचन्द्रजी भगवान, जो कि माँगीतुङ्गी पर्वतसे निर्वाण पधारे हैं, उनको कितने कितने प्रकारके संकट सहने पड़े। बड़ा आदमी कहते किसे हैं ? जो बड़े बड़े संकटोंके बीचसे गुजरे, फिर भी धीर रहे बस यही बड़े पुरुषका लक्षण है। बड़े पुराणोंको भी आप देख डालिये, उनमें भी करीब करीब यही बात मिलेगी। जो भी लोग महापुरुष माने गये वे प्रायः इसी बातपर माने गये।

कर्मविपाकका एक उदाहरणमें चिन्तन—श्रीराम भगवानका जीवनचरित्र देखिये ! छुटपनमें ही अपने माँ-बापसे बिछुड़कर धर्मात्मा राजा जनकके राज्यमें साधर्मियोंपर उपद्रव करने वाले म्लेच्छ राजाओंसे युद्ध करनेमें रहे उस समयके कष्ट देखिये ! सीतास्वयम्वरके समयके कष्ट देखिये ! राज्याभिषेक होनेको था, पर क्यासे क्या घटना घट जाती है, रामचन्द्रजीको जङ्गल जाना पड़ता है उस समयके संकट देखिये ! यद्यपि कैकेईने रामचन्द्रजीको जङ्गल नहीं भेजा था, उसने तो जब यह बात देखी कि राजा दशरथ भी विरक्त हो रहे हैं, हमारा पुत्र भरत भी विरक्त हो रहा है, तो अपने पुत्रको विरक्त न होने देने अर्थात् अपने पास घर पर ही रखनेके विचारसे अपने पूर्वमें पाये गये बरदानको जो कि अभी राजा दशरथके वचन भण्डारमें रखा था माँग लिया। उस वचनमें कैकेईने अपने पुत्र भरतको राजगद्दी मांगा था। बस वचनके माँगनेका उद्देश्य उस कैकेईका यही था कि पति दशरथ तो विरक्त होते हैं वे मानेंगे ही नहीं, पर मेरा पुत्र भरत तो न विरक्त हो यदि मेरा पुत्र भरत घरपर हो रहेगा तो मैं पुत्र विहीन तो न कहलाऊंगी। केवल यह भाव था कैकेईका भरतको राजगद्दीका वरदान माँगनेका लेकिन रामचन्द्रजीने यह विचारकर जंगल जाना चाहा था कि लोगों की दृष्टि हमारे ऊपर है हमारे रहते हुये हमारे भाई भरतका कुछ भी प्रताप न रहेगा तो यही सोचकर वह जंगल चले गये थे। तो रामचन्द्रजीके उस समयके सकट देखिये, बादमें जब जंगलमें रहे रामचन्द्र जी, तो सीताहरण आदिकके संकट देखिये, रावणसे सीताको जीतनेमें युद्ध करना पड़ा उसका संकट देखिये। खैर किसी तरहसे सीताको लेकर अयोध्या पहुँचे तो कुछ वर्ष व्यतीत होनेके बाद वहाँ फिर एक सकट सामने आ गया घोबिनकी स्त्रीने कह दिया था कि यदि में दूसरेके घर रही तो क्या हुआ, सीताजी भी तो २ माह तक रावणके घर रही, लो फिर सीताजीको जगलमें छोड़ा, उस समय के संकट देखिये, सीताजीके उस समय गर्भ था। लवकुश नामके दो पुत्र हुए फिर कुछ वर्षों बाद मेलमिलापके प्रसंगमें लवकुशको रामचन्द्रजी व लक्ष्मणजीसे युद्ध करना पड़ा उस समयके संकट देखिये सीताजीका अग्नि परीक्षाके समयके संकट देखिये, देवोंने जब राम लक्ष्मणके स्नेहकी परीक्षाके लिए एक ढोंग रचा था महिलायें रोती हुई दिखाई, हाय राम हाय रामका शब्द बोलती रही व लक्ष्मणसे कहा दिया था कि रामचन्द्र तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मर गए सो उनके वियोगने लक्ष्मण मरगये। श्रीराम मरे नहीं थे बल्कि देवोंने वैसा ही ढोंग रच डाला था। । आखिर लक्ष्मणको मरा हुआ जानकर रामचन्द्रजी किस तरह से व्याकुल रहे उस समयके संकट देखिये। तो यद्यपि इतने प्रकारके संकट उनके ऊपर आये। तो ये सारे संकट उनपर कब तक आते रहे जब तक उन्होंने सबके परिग्रहोंका त्याग नहीं किया। जब वह निर्ग्रन्थ साधु हुए उस समय भी सीताका जीव जो कि १६ वें स्वर्गमें प्रतीन्द्र हुआ था वह स्वयं रामको डिगानेके लिए आया था। सीताके उस जीवने अपना सुन्दर स्त्रीका रूप बनाया, बड़े हाव भाव दिखाये रावण सिरके केश पकड़कर सीताको घसीट रहा है, दृश्य दिखाये। पर रामचन्द्रजी तो उस समय पूर्ण विरक्त थे इस कारण उनका मन रंच भी न डिगा सीताका जीव इसलिए उन्हें डिगाने आया था कि यह अभी कुछ समय तक संसारमें ही बने रहें और बादमें हम दोनों एक साथ मोक्ष जायें।

विपाकविचय धर्मध्यानसे आत्मशिक्षा – तो मूलमें यह बात चल रही थी कि ये कर्म जीवको किस किस प्रकारसे फल दिया करते हैं। तो कर्मोंके फलका इस प्रकारका चिन्तन करना सो विपाक विचयनामक धर्मध्यान है बहुत से लोग छिपकर पाप करते हैं। ठीक है कुछ पुण्यका उदय है इसकारण वे पाप यहां छिप भी सकते हैं, जैसा का तैसा पुण्योदय बराबर कुछ ही काल बना रह सकता है पर वे पापकर्म अपना फल अवश्य देकर रहते हैं। इस प्रकारका चिन्तन करना सो विपाकविचय नामक धर्म ध्यान है। इस प्रकारका चिन्तवन करके अपने आपको सावधान रखना चाहिये। यदि थोड़ा बहुत वैभव भी प्राप्त हो रहा है हिंसा करके अथवा अन्याय करके, तो उसे न करें। उस लाभके लोभको छोड़ दें और अपनेको एक ऐसे न्यायपूर्ण जीवनमें ढालें कि दोनों लोकमें प्रकाश और आनन्दमें रहें। यही तो इस विपाकविचय धर्मध्यान का लाभ है।

संस्थानविचय धर्मध्यान और उसका महत्त्व – संस्थानविचयधर्मध्यान – यह ऐसा ध्यान है कि जिसमें तीन लोक और तीन कालकी रचना उपयोगमें बनी रहे, इसका साधारण स्वरूप यह है कि यह ध्यान मुख्य रूपसे मुनियोंके हो पाता है। वैसे चारों धर्मध्यान अविरत सम्यग्दृष्टि चतुर्थ गुणस्थानसे होता है, पर मुख्यरूपसे संस्थान विचय धर्मध्यान मुनि कर पाते हैं। अर्थात् ऐसा ध्यान बनाये रहना कि यह संसार बहुत विशाल है, ३४३ घनराजू प्रमाण हैं। मध्यलोक इतना बड़ा है कि जहाँ असंख्यात द्वीप समुद्र हैं। ऐसी जब लोकके विस्तारकी बात चित्तमें रहती है तो वहाँ फिर राग करनेका अवकाश नहीं रहता। लोग कीर्तिके लिए, रागके लिए जो इतना अधिक चलते हैं उसका कारण यही है कि उनके चित्तमें इतनी भर बात बसी है कि यह हमारा नगर है, यह इतना हमारे पासका क्षेत्र है और यह इतनी सारी दुनिया है, ये इतने लोग हैं, इनसे ही हमारा सम्पर्क है, इनसे ही हमारा सब कुछ व्यवहार है, तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जिनसे अपन व्यवहार चलता है उन्हींसे रागद्वेषकी बातें चलती हैं लेकिन जहाँ चित्त में यह बात बैठी हो कि अरे यह कितनी बड़ी दुनिया है, यह तो स्वयंभूरमण समुद्रके पानीके सामने एक बूंद बराबर भी नहीं है। स्वयंभूरमण समुद्रकी बूंदकी चाहे गिनती बन जाय, पर इतनी परिचित दुनिया इतने बड़े लोकके सामने कुछ भी तो गिनती नहीं रखता, वहाँ यह बात चित्तमें बस जाती है कि अरे यहाँ किसलिए पाप करना, किसलिए विकल्प करना, किसलिए कीर्ति चाहना।

संस्थानविचय धर्मध्यानमें आत्मशोधन—संस्थानविचय धर्मध्यानमें यह उपयोग रहता है कि इस संसारमें न जाने कितनी कितनी प्रकारकी पर्यायें हैं, नाना प्रकारके देह हैं, नाना प्रकारके उनके परिणमन हैं तो ऐसी बातोंका ज्ञान होनेसे फिर इन पर्यायोंसे सम्पर्क रखनेकी इच्छा नहीं रहती। संस्थानविचय धर्मध्यानका वास्तविक महत्त्व क्या है? जहाँ यह जाना कि समय तो अनन्तानन्त है। इस काल की न कभी आदि हुई है, न कभी अन्त होगा। यह समय तो सदा रहेगा। इतने अनन्त समयके सामने ये १००–५० वर्ष कुछ गिनती भी रखते हैं क्या? इतने छोटेसे जीवनमें यदि विषय कषायोंमें भी रमकर समयको खो दिया तो जन्म मरण करते रहनेकी परम्परा बढ़ती चली जायगी। इसलिए यहाँ सावधान रहना और शाश्वत निज ज्ञानस्वभावकी प्रतीति रखना कि यह ही मैं हूँ, इतना ही मेरा वैभव है, यही मेरा वैभव है यही मेरा लोक है, इस प्रकारका उन्हें बल मिलता है इस संस्थान विचय धर्म ध्यान से। फिर उसके और भी रूप हैं पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत आदिक तो धर्मध्यानोंमें यह संस्थानविचय धर्मध्यान उत्कृष्ट है।

शुक्लध्यानका प्रभाव—अब शुक्लध्यानकी बात सुनिये–शुक्लध्यान ४ प्रकारके होते हैं जिनमें पहिला है–पृथक्त्व वितर्क वीचार यह पृथक्त्व वितर्क वीचार उच्च श्रेणी के मुनियोंके होता है। सप्तम गुण स्थान तक नहीं होता। इसके बाद दो श्रेणियाँ होती हैं। उपशमश्रेणि और क्षपकश्रेणि। क्षपक श्रेणीमें कर्मोंका क्षय करके वह मुनि भगवान बनता है और जो मुनि उपशम श्रेणीमें चढ़ता है वह ११ वें गुणस्थानसे नीचे गिर जाता है, बादमें जब कभी वह अपनेको सम्हालता है तो फिर क्षपकश्रेणीसे चढ़ कर वह केवली भगवान बनता है, शुक्लका अर्थ है स्वच्छ केवल एक ज्ञानका ही स्वच्छ प्रकाश चल रहा है उसमें जो कुछ भी ध्यान बन रहे हैं वे सब शुक्लध्यान है। तो इस प्रथम शुक्लध्यानमें अभी ज्ञप्तिकी स्थिरतामें कमजोरी है। यदि किसी चीजका विचार करने बैठ जायें और विचार करते करते उसी विचारपर एक दम टिक जायें ऐसा वे कभी नहीं कर पाये, कभी पुद्गलोंका विचार बनता है तो कभी जीवोंका। मगर बुद्धि पूर्वक रागद्वेष नहीं है तो ये ध्यान बिना रागद्वेषके चलते हैं। फिर आगे बढ़कर दूसरा शुक्लध्यान होता है एकत्व वितर्क अवीचार। जिस एक वस्तुका चिन्तन कर रहे हैं। उसीका चिन्तन करते रहेंगे, जिस योगसे जिन शब्दोंसे चिन्तन कर रहे हैं उन्हींसे करेंगे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ऐसा ध्यान अन्तमुहूर्त तक ही होता रहता उसके प्रतापसे केवल ज्ञान हो जाता है।

मोहक्षयसे वेदनीयकी अफलता—यहाँ यह कह रहे हैं कि भगवानने शुक्ल ध्यानके बलसे मोहनीयका पहिले ही अभाव कर दिया है। तो मोह न रहनेपर वेदनीय कर्मका उदय अपना कार्य नहीं कर सकता। यदि मोहनीयके अभावमें वेदनीयका उदय कार्य करदे तब इसका अर्थ यह हुआ कि अरहंत भगवानके परघात नामकर्मका भी उदय चलता है। देखिये परघात किसे कहते हैं। जिसके उदयमें ऐसी शक्ति हो कि दूसरेका भी घात कर सके। यदि भगवानके परघातका उदय है तो इसका अर्थ है कि भगवान किसीको मारेंगे भी ताड़ेंगे भी यदि कहो कि मोहनीयके अभावमें ये कुछ काम नहीं कर पाते हैं तो मोहनीयके अभावमें वेदनीय भी काम नहीं कर पाता यह भी मान लेना चाहिये। मोहनीयके अभावमें यदि वेदनीयके उदयसे दुःख होने लगे तो परघात भी १३ वें गुणस्थान तक है तो उस भगवानके द्वारा भी वेदनीयके कार्यके समान परका ताडन पीडन भी होने लगे ? यदि यह कहो कि भगवान तो परम दयालु है इस कारण पर घातका उदय होनेपर भी वे दूसरे से ताड़ते नहीं हैं इसी कारण वे भगवान दूसरे के द्वारा भी नहीं ताड़े जाते। तो अनन्त सुख, अनन्त वीर्य होनेके कारण भगवानमें कोई क्षुधा ही नहीं है तो फिर वहां कवलाहारका ही क्या प्रसंग है। फिर यह क्यों नहीं मान लेते कि असाता वेदनीयका उदय होनेपर भी वे भगवान भोजन नहीं करते।

प्रभुका अन्तर्वर्तन—प्रभुका काम क्या रह गया इस पर दृष्टि दें। कोई सिद्ध आत्माका अभेद ध्यान करके अरहंत हो गये तो अरहंत अवस्थामें अब वे क्या करने सिवाय जानन और आनन्दानुभवन करनेके। अलौकिक आत्मीय आनन्द भोगना और जाननदेखन हार रहना, बस इतने ही काम उनमें पाये जाते हैं। यहाँ के लोग तो कल्पनामें अनेक काम करते हुए पाये जाते हैं इधर उधर देख रहे बातें भी कर रहे काम भी कर रहे मौज भी मान रहे परिश्रमसे थककर विश्राम भी कर रहे हैं, इस प्रकार यहांके संसारी जन अनेक काम करते हैं पर यहांके लोगोंके ज्ञान और सुख निःशक्तिक हैं पर भगवानके ज्ञान और आनन्द असीम है और निरन्तर प्रतिसमय उनका यह ज्ञानानन्दका कार्य चलता रहता है लेकिन थकने का कार्य नहीं है। वही समस्त ज्ञान, आनन्द, निराकुलता उनके अनन्तकाल तक चलती रहती है। भगवान न तो दयावान हैं और न निर्दय हैं न उनके शुभभाव हैं न अशुभभाव है। दया और निर्दयता आदिकके भाव मोहनीयके कार्य हैं। पर मोहनीयका जब अभाव हो गया तो भगवान के ये शुभ अशुभ भाव नहीं रहते। उन्हें करुणावान, परम करुणावान कहना अयुक्त है उनकी परकी करुणा यहीं है कि वे अपने आप अनन्त आनन्दमें रत रहा करते हैं और ज्ञानके द्वारा ज्ञाता दृष्टा रहा करते हैं इसे कहलो करुणा। और उनकी करुणा यही है कि जिनका ध्यान करके सम्यग्दृष्टि योगी भव्यजन अपने दुःखको टाल लेते हैं। यों निमित्त दृष्टिसे करुणाको उपचार करलो पर भगवानमें न करुणाकी बात है और

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आ हिंसाकी बात है।

प्रभुस्वरूपके परिचयसे आत्मशिक्षण—जो स्वरूप प्रभुका है उसको सुन करके हमें अपने मनमें क्या बात लेनी चाहिए ? देखिए ! विषय कषाय भोगनेमें बड़ी थकान रहती है, मनुष्य आकुलित रहता है। उस विषय कषायकी थकानको दो मिनट को भी तो दूर करें अर्थात् अन्तरङ्गमें इस प्रकारका ज्ञान जगायें कि बाहरी कोई चीज इस ज्ञानमें न रहे किसी भी चीजका विकल्प न रहे, ऐसा सोचकर कि मैं अपने आप को तकूँ तो कि असलमें मैं हूं क्या ? ये जो नाना प्रकारकी परेशानियां हो रही हैं, विकल्प चल रहे हैं, किसी एक बातपर भी नहीं टिक रहे हैं, यह क्या विडम्बना है। मैं वास्तवमें हूं क्या, किस तरहका मेरा स्वरूप है. बस मुझे यही जानना है, इसके ही जाननेका सत्याग्रह करले और जो अटपट विकल्प उठते हैं उनका असहयोग करदें अर्थात् उनको अपने दिलमें स्थान न दें। ऐसा सत्यका आग्रह करलें कि बस मुझे अब किसी भी प्रकारका विकल्प नहीं करना है, मैं तो विश्रामसे रहूँगा और अपने आपको ही अनुभवूँगा कि वास्तवमें मैं क्या हूँ ऐसा संकल्प करके निस्तब्ध बैठें तो विदित होगा कि वास्तवमें मैं क्या हूँ और उसके विदित हो जानेपर फिर ये अनन्त दुख मिट जायेंगे। तो ज्ञानरूप यह मैं अपने ज्ञानमें आऊँ, उस समय जो अनुभूति होती है उसके बाद फिर ये दुनियाकी सब चीजें काष्ठ पाषाणकी तरह निश्चल दीखती हैं और इनमें रहने वाला जो जीव तत्त्व है वह भी निश्चल दीखता है। यह सब औपाधिक हो रहा है, यह सारी दुनिया मोहमें अनुरक्त है यहां कुछ भी सार नहीं है। जो सारभूत तत्त्व है जो सबमें मौजूद है उसपर दृष्टि न होनेसे ये सब भटकनायें हो रही हैं। उसे विषय कषायोंके भावमें सार प्रतीत नहीं होता। उस समयके लिए यह शंका न कर बैठें कि उनका जीवन तो फिर मौजरहित होगया और उन्हें तो आत्मीय आनन्द मिल रहा है।

लोकवैभवकी अरम्यता—आज जो आप सबको विषयोंके साधन प्राप्त हैं वे सब तो पुण्योदयसे आते हैं। इनका आना आजके भावोंके आधीन बात नहीं है। कदाचित् आपने किसी चीजकी चाह की और वह चीज आपको प्राप्त हो गई तो आप समझ लेतेहैं कि यह चीज हमारे आजके ही परिणामसे प्राप्त हुई, पर ऐसी बात नहीं है, वह तो आपका उदय ठीक चल रहा है, पूर्वभवमें आपने धर्मकार्य किया था, उससे जो पुण्यका बंध हुआ था उसके उदयसे आपको वह चीज प्राप्त हुई है। तो इस धन वैभवकी उपेक्षा करना चाहिए। आने दो आयगा आपके न चाहनेपर भी आयगा, रहेगा पर उस वैभवके रहनेपर अब इस सम्यग्दृष्टि ज्ञानी पुरुषको क्या मौज रहा ? देखिये ! विचित्रता कि जब तक अज्ञान था, आशा करते थे तब तक तो मनमाना वैभव नहीं मिल रहा था, जब तत्त्वज्ञान हुआ, सम्यग्दृष्टि हुए किसी वस्तुकी चाह न रही तब चक्री वगैरहके उच्च पद प्राप्त हुए। सो जब चाह थी तब वस्तुकी प्राप्ति न हुई और जब चाह नहीं है तो वस्तुकी प्राप्ति हो रही है तो उस वस्तुकी प्राप्तिसे लाभ क्या ? यहांपर किसी भी वस्तुकी चाह न रहे तो इस लोकमें भी आनन्द है और

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

परलोकमें भी। अपने आत्मामें बसा हुआ जो परमात्म तत्त्व है जो अरहंतसिद्ध प्रभुके विकासके समान स्वभाव रखता है उसकी शरण मानें यह ही मात्र मेरा शरण है' यही प्रभु है, यहीं मेरे निकट रहे, तो इसके प्रतापसे तो सर्वसिद्धियाँ हैं पर बाह्य पदार्थोंकी आशासे, इनकी ममताओंसे आत्माको सिद्धि नही है।

विमोह प्रभुके वेदनीयको निष्फल न माननेपर मंदराग साधुओंके वेदकी कार्यकारिताका प्रसङ्ग सकल परमात्मा अरहंत भगवानमें वेदनीय कर्मका उदय यद्यपि है तो भी मोहनीय कर्मका क्षय होनेसे वह फल नहीं दे सकता। वेदनीय कर्म मोहनीयकी अपेक्षा रखकर ही अपना कार्य करनेमें समर्थ है। यदि कर्मोंका उदय निरपेक्ष होकर कार्य उत्पन्न करने लगे तो तीन वेदोंका और कषायोंका उदय क्रमशः ९वे, १०वे गुणस्थान तक है। जब मोहकी अपेक्षा लिए बिना, अप्रत्याख्यानावरण कषायकी प्रेरणामें ही वेदनीय अपना कार्य करता है उसकी अपेक्षा लिए बिना फिर तो वेद भी उन साधुजनोंमें काम करने लगें और गृहस्थोंकी तरह उनमें भी विषय प्रसङ्ग आ जायेंगे अथवा भृकुटी आदिक चलाना उनमें भी आ जायगा। देखिये! साधुजन यदि आंखें मटकायें, मुंह टेढा करें ऐसी प्रक्रिया करें तो वे प्रक्रियायें साधुके अयोग्य बतायी गई हैं। साधुके ऐसी समता होती है कि जिसके दर्शन करने मात्रसे लोग शान्तिका लाभ लें और वीतरागताका उपदेश ग्रहण करें। उदयसुन्दरका बहनोई व्रजबाहुके विवाह होनेके ५-७ दिन ही बाद उदयसुन्दर अपनी बहिनको लिवाने चला तो व्रजबाहु भी स्त्रीके साथ हो गए अपनी स्वसुराल तक जानेके लिए। आजकल यदि कोई ऐसा काम करे तो शायद वह तो लोगोंकी निगाहसे गिर जायगा। आजकल भी यदि कोई ऐसा काम करे तो शायद वह तो लोगोंकी निगाहसे गिर जायगा। आजकलकी बात तो पता नहीं पर अभी २०-३० वर्ष पहिले यदि इस प्रकारका काम कोई करता तो वह तो बड़ा बुरा समझा जाता। तो चले वे तीनों पुरुष, व्रजबाहु, व्रजबाहुकी पत्नी और व्रजबाहुका साला उदयसुन्दर। तो रास्तेमें जब एक जङ्गल पड़ा तो उन्हें एक मुनिराजके दर्शन हुए। मुनिराजकी मुखमुद्राको देखकर व्रजबाहुका मोह गल गया। मुनिराज तो अपनी ध्यानकी मुद्रामें बैठे हुए थे पर मुनिराजकी उस शान्त मुद्राको ही देखकर उस व्रजबाहुका चित्त एकदम विरक्त हो गया। तो आप समझिये कि जिसका अन्तरङ्ग विशुद्ध है इस ही कारण जिसकी शांत मुद्रा देखकर भव्यजीव विरक्त होकर तिर जाते हैं। इस प्रकरणमें यह कह रहे हैं कि यदि मोहके बिना अन्य प्रकृतियां कार्य करने लगें तो साधुजनोंमें चूंकि कषायोंका वेदका उदय तो है ही उनमें भी भृकुटी चलाने, आंखें मटकाने आदिकके ऐसे अवगुण आ सकते हैं, पर होते नहीं कभी भी। दोषापत्ति दे रहे हैं और फिर जब मनमें क्षोभ आ गया तो शुक्लध्यानकी प्राप्ति कैसे होगी और क्षपकश्रेणीपर वे कैसे चलेंगे? और क्षपकश्रेणीका आरोहण किए बिना कर्मोंका क्षपण भी नहीं बन सकता है। इससे यह सीधा मानलो कि अरहंत भगवानमें न तो क्षुधाकी वेदना होती है और न उसका प्रतिकार करना पड़ता है, न

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भोजन करना पड़ता है।

बलिष्ट आत्माके अशुभ प्रकृतियोंकी कार्यकारिताका अनवकाश—अब यहां शंकाकार कह रहा है कि कर्मोंके उदय भी आयें और वे अपने कार्य न कर सकें तो फिर नाम आदिक भी अपना कार्य करने वाला नहीं रहा। अर्थात् प्रभुके देह तो है ना अभी। जब तक अरहंत भगवानको सकल कर्मोंसे मुक्ति नहीं मिलती तब तक वे देहमें रहते है। चार अघातिया कर्म अभी शेष हैं तो वहां देह बना हुआ है, और नामकर्मके उदयसे देह रहता है तो कर्म जब वेदनीय निष्फल हो गया तो नाम कर्म आदिकका कर्म भी निष्फल हो जाय। तो समाधान देते हैं कि यह कहना असंगत है। जो कर्म शेष रह गए हैं अरहंत भगवानमें, उनमें कई प्रकृतियां तो शुभ हैं और कई अशुभ। तो शुभ प्रकृतियोंका सामर्थ्य खतम नहीं होता। सो शुभ प्रकृतियां तो अपना कार्य कर रही हैं, अशुभ प्रकृतियाँ कार्य नही करती। जैसे एक दृष्टांत लो—एक बलवान राजा जो अपने न्याय नीतिके मार्गपर चल रहा है अर्थात् दुष्टोंका निग्रह करना और सज्जनोंका पालन करना यह जिसने अपना न्याय बना लिया है ऐसे राजा ने अगर कोई देश प्राप्त कर लिया तो उस देशमें जो दुष्ट लोग होंगे वे जीवित रहकर भी अपना दुष्ट आचरण कर सकने वाले नहीं बन सकते, पर सज्जन लोग उनकी वृत्तिका तो प्रतिबन्ध नहीं। वे अपने कार्यके करने वाले होते हैं। इसी प्रकार अरहंत भगवानने घातिया कर्मोंको जीता। अपने आत्मापर विजय प्राप्त की। अब जीवित याने उदित जो शुभ प्रकृतियां हैं वे अपना कार्य करती हैं किंतु अशुभ प्रकृतियां अपना कार्य नहीं करती।

अशुभ प्रकृतियोंकी कार्यकारिताके अनवकाशका कारण अशुभ प्रकृतियोंके अनुभाग रसकी निर्जीर्णता—शंकाकार पूछता है कि ऐसा कौनसा कारण है कि अब अरहंत भगवानमें शुभ प्रकृतियोंका सामर्थ्य तो किसीसे रुद्ध नहीं होता और अशुभ प्रकृतियोंकी सामर्थ्य बिगड़ गई अर्थात् खोटी प्रकृतियां जो भी भगवानमें शेष रह गई वे तो फल नहीं देतीं और शुभ प्रकृतियाँ अपना कार्य करती हैं। उत्तर देते हैं कि अरहंत भगवानने अशुभ प्रकृतियोंकी फलदान शक्तिका घात कर दिया है। अशुभ प्रकृतियोंकी फलदान शक्तियां फिर न होंगी। करणानुयोगके शास्त्रोंमें स्पष्ट वर्णन है कि जब कभी कर्म निषेकोंका क्षय होता है और संक्रमण विघटन आदिक कर्मोंमें चलते हैं उस समय अनुभागका क्षय होता है अशुभ प्रकृतियोंके फल देनेकी शक्तिका क्षय होता है। शुभ प्रकृतियोंके फल देनेकी शक्तिका क्षय नहीं होता। जैसे जो गुणोंका घात करें उन्हें ही तो दण्ड मिलेगा। जो गुणोंका घात नहीं करते, जिनमें कोई दोष नहीं होता है उनका घात नहीं हुआ करता है।

प्रतिबद्धसामर्थ्य वेदनीयको निष्फल न माननेपर केवलिसमुद्घातकी व्यर्थता—यदि जिसकी सामर्थ्य रोक दी गई ऐसा असाता वेदनीय भी अपना कार्य

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

करने लगे तो भगवानका दण्ड प्रतर आदिक जो विधान होता है वह व्यर्थ होगा, क्योंकि जब आयु कर्मकी स्थिति थोड़ी रह जाती है, वेदनीय आदिक कर्मकी अधिक स्थिति होती है, तो उनको आयुकर्मके समान बनानेके लिए समुद्घात होता है पर जिनकी स्थिति अधिक है और अनेक उपाय करनेपर भी वे अपनी सामर्थ्य नहीं खतम करते तो यह समुद्घात विधान क्यों होता है और फिर मोक्ष भी न हो सकेगा। समुद्घात विधानका यह अर्थ है कि जिस समय अरहत भगवानकी आयुका निकट समय आता है अन्तर्मुहुर्तकी आयु रह गई और शेष कर्मोंकी रह गई हजारों वर्षोंकी तो यह न होगा कि आयु पहले खतम हो जाय और वेदनीय आदि बादमें खतम हों। चार अघातिया कर्म एक साथ वियुक्त हुआ करते हैं। तब वहाँ जो बढ़ी हुई स्थितिके तीन कर्म हैं उनको आयुके बराबर करनेके लिए समुद्घात होता है।

समुद्घातका विधान—समुद्घात कहते हैं उसे कि आत्मा अपने प्रदेशोंसे शरीर न छोड़कर बाहर फैले। आत्मा शरीर प्रमाण फैला हुआ है इसके प्रदेश उतने में ही विस्तृत हैं। समुद्घातके समय क्या होता कि आत्माके प्रदेश शरीरके बाहर भी फैलते हैं, अन्य समुद्घातोंमें भी कुछ सीमा तक यही होता है। जैसे जब कभी मनुष्यमें कषाय तेज जगी तो आत्माके प्रदेश शरीरके बाहर भी निकल पड़ते हैं और तेज गुस्सा करने वालेसे लोग कह भी देते हैं कि आप आपेसे बाहर क्यों हो रहे हैं? अध्यात्म-दृष्टिसे इसका यह भी अर्थ लिया जाता है कि आप स्वरूपसे बाहर क्यों हो रहे हो? तो जैसे कषाय तेज जगी तो आत्माके प्रदेश शरीरके बाहर थोड़ी देरको फैल जाते हैं। जब शरीरमें तीव्र वेदना हो उस कालमें भी जीवके प्रदेश शरीरसे बाहर फैल जाते हैं। जब मुनियोंके अच्छे या बुरे तेज भाव होते हैं तो तैजस वर्गणाओंका उनके कंधेसे पुतला निकलता है उस रूपमें प्रदेश फैल जाते हैं। यहाँ भगवान अरहंतके शेष तीनों कर्मोंको आयुके बराबर करनेके लिए उनका समुद्घात होता है। तो पहले उनके प्रदेश नीचेसे ऊपर तक डंडेके माफिक फैल जाते हैं। फिर अगल बगलमें फैलते हैं तो कपाट के आकार फैल जाते हैं। फिर आगे-पीछे फैलते हैं तो वे प्रतरके आकार हो जाते हैं और फिर जितनी जगह वातवलयमें बची वहां भी फैल जाते हैं तो लोकपूरण हो हो जाता है उस समय लोकाकाशके एक एक प्रदेशपर आत्माका एक एक प्रदेश ठहरा है। इसे समवर्तणा कहते हैं, फिर संकुचित होता उसी क्रमसे प्रतर कपाट दण्ड और फिर शरीरमें ज्यों का त्यों रह जाता है। इतने समयमें वे अधिक स्थितिके बांधे हुए कर्म आयुके बराबर हो जाते हैं, उनकी स्थिति सूख जाती है। जैसे धोई हुई धोती फैला दिया तो वह जल्दी सूख जाती है इसी प्रकार प्रदेश फैले तो वे सब सूख करके आयुके बराबर रह जाते हैं। यह कार्य किया जा सकता है तभी तो किया गया। तो यह बात नहीं रही कि जो कर्म हो वह अपना उतने समय तक फल जरूर ही दे।

प्रभुस्वरूप और भुक्त्यभावका अतिशय—यदि यह कहो कि तपश्चरण

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

का ऐसा माहात्म्य है कि उससे शेष अघातिया कर्मोंकी शक्ति निर्जीर्ण हो जाती है, क्षीण हो जाती है तो वह अधिक स्थितिके रूपमें फल देनेमें समर्थ नहीं है इसलिए आयु कर्मके बराबर वे तीन कर्म हो जाते हैं। इसी प्रकार वेदनीयको मानलो कि प्रभुके तपश्चरणका इतना अतिशय है कि मोह क्षीण हो जानेके कारण अब वेदनीय कर्म असाता नहीं उत्पन्न कर सकता है। प्रभुस्वरूप कैसा है इसका भान करनेके लिए अपने आपमें प्रयत्न होना चाहिये, क्योंकि बाहरमें हम कुछ जाननेकी कोशिश करेंगे तो वह जानना इन्द्रिय द्वारा बनेगा, और इन्द्रिय द्वारा भगवानका स्वरूप नहीं जाना जा सकता। साक्षात् समवशरणमें विराजमान अरहंत भगवान भी आंखोंसे दिखेंगे तो वहां क्या दिखेगा ? भगवानका शरीरपर जो देह है वह प्रभु नहीं, जो अन्दरका ज्ञान पुञ्ज है वह प्रभुस्वरूप है। हम लोग भी अवलम्बन लेकर प्रभुका ध्यान करते हैं और नामका अवलम्बन लेते हैं। आदिनाथ अजितनाथ आदि तीर्थङ्करका हम ध्यान करते हैं, पर प्रभुस्वरूप, प्रभु जिसे कहते हैं वह उस शरीरका नाम प्रभु नहीं। प्रभु तो विशुद्ध ज्ञानपुञ्ज है, तब फिर जिन्हें आदिनाथ अजितनाथ आदि नाम लेकर उनके समयमें पुकारा गया, उसे यों ही समझिये जैसे कि हम आप लोगोंका नाम पुकारा जाता है। तो नामके द्वारा जिसका बोध किया वह तो एक पर्यायका बोध है, प्रभुका नाम नहीं। जो नाम है वह प्रभु नहीं। तो प्रभुस्वरूप चितारनेके लिए अपने आपकी स्थिति कुछ ऐसी बनानेका यत्न करें, स्थिर आसनसे, स्थिर चित्तसे स्थिर आत्मस्वरूपको देखनेका यत्न करें। जहां देहका भी भान न रहे कि देह भी है, ऐसी स्थितिमें जो एक ज्ञानघन अनुभव होगा, केवल ज्ञानज्योति मात्र ही अपने आपके लिए अनुभूत होगा उस अनुभवके द्वारसे अरहंतके स्वरूपका अनुमान किया जा सकता है फिर वहां सोचो प्रभुके क्षुधा भी होती है क्या ?

ध्यानासनोंका प्रभाव—देखिये ध्यानके मुख्य आसन दो बताये गए हैं – एक पद्मासन और एक खड्गासन। और एक अधन मृतकासन भी कभी उपयोगी कहा जा सकता है। पद्मासन तो सब जानते ही हैं बायें पैरको दाहिनी जांघपर रखा और दाहिने पैरको बांये जंघापर रखा, पैरोंके बीच बायें हाथकी गदेलीपर दाहिने हाथकी गदेली रखा। तो इसमें एक वैज्ञानिक मर्म देखो। हाथकी हथेलीसे कुछ चीज छूनेमें जल्दी उसका ज्ञान होता है और हाथकी हथेलीकी जो पीठ है उससे छूनेमें स्पर्शमें लगाव जैसा बोध नहीं चलता। तो अब देखिये कि दोनों पैरोंके तलोंकी पृष्ठ छुआ हुआ है दोनों हाथोंके हथेलियोंकी पीठ छुवे हुए हैं और जब बैठमें अपने शरीरका ऊपरी भाग बिल्कुल सीधा करके बैठ जाता है तो इस सीधे आसनसे बैठनेमें श्वासोच्छ्वास की रंच रुकावट नहीं होती है तो वहाँ श्रम नहीं रहता है। और इस नलीके भीतर ५-६ जगह चक्रावत तथा कमलाकार रचना है जो किसी रूप में डाक्टर या वैद्य बता सकेंगे। जब ध्यानमुद्रा होती है तो छहों स्थानोंके कमल नीचेसे ऊर्द्धकी वायुका सम्बन्ध पाकर ये षट्चक्र प्रफुल्लित हो जाते हैं। इस शरीरकी बाह्य स्थितियां हैं,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उसमें मनका प्रासाद बन सकता है, और ज्ञानी पुरुष आत्मतत्वके ध्यानमें यथायोग्य इस ओर आ सकता है। खड्गासनमें ध्यानके लिए कितना अवसर है। कोई पुरुष सामने पैर रखकर स्थिर खड़ा होकर शरीरको ऊपरसे ढीला करके खड़ा होकर भीतर का तो कड़ापन पद्मासनकी भांति रहे मगर ऊपर अपने शरीरको ढीला छोड़कर जब अन्तः अपने उपयोगको सावधान बनाता है तो उस समय इस आसनसे बड़ा सहयोग मिलता है। कभी कोई यह शंका न करे कि इस तरह अगर शरीरका भान छोड़कर उस खड्गासनमें अपने भीतर उपयोग लगाकर निर्विकल्प रहे तो वह शरीर गिर पड़ेगा क्या ? नहीं गिरता। ऐसी सम स्थितिसे पैरोंको जमा करके उस खड्गासनसे ध्याताने अपना ध्यान जमाया है। तीसरा आसन अपन सबके प्रयोगके लिए मृतकासन समझ लीजिये। जैसे मुर्दा पड़ा रहता है - दोनों पैर फैले हुए, हाथ पसरे हुए और ढीले शरीरसे इस तरहसे मृतकासनसे पड़कर उस समय उपयोगका शरीरमें लगाव न रहे तो ऐसी स्थितिमें भी अपने आपके उपयोगको अपने आपमें बसायें तो उसे बड़ा सहयोग मिलता है।

प्रभुस्वरूपके परिचयीका प्रभुके कवलाहाराभावका अवधारण— आसनोंमें मुख्य है पद्मासन। उससे बैठकर एक बहुत सीधी मुद्रामें रहकर शरीरका भी भान छोड़कर एक मात्र ज्ञानपुञ्ज हूं मैं इस तरहसे अपने आपको निहारें। भगवान ज्ञान पिण्डका कहते हैं सो अपने आपको भी ज्ञानपुञ्जमात्र सोचे बिना, अनुभव किये बिना, भगवानकी शांतिका अनुभव और आनन्द नहीं पाया जा सकता और न फिर भगवानका स्वरूप क्या है यह समझमें आ सकता है। तो प्रभुको जानना है तो अपने आपके सहज स्वरूपको जानना पड़ेगा। उससे वहां परिज्ञान होगा। अब ऐसा कुछ परिज्ञान करके कि वहां तो केवल एक ज्ञानपिण्ड है, ज्ञान ज्ञान की वृत्तियाँ हैं और इसी कारण अत्यन्त निराकुल है। ऐसे उस शान्त ज्ञान समुद्रमें जहां अब अशाँति का कारणभूत मोहनीयकी हवा रंचमात्र नहीं चलती। वहां तरंगका क्या काम ? भूख, प्यास होना, इच्छा होना ये सब तरंगोंके काम हैं। तो प्रभुमें वेदनीय कर्मका कोई फल नहीं रहता। वे तो अपने अनन्त आनन्दसे ही आनन्दित रहा करते हैं।

सकल परमात्माके वेदनीयको निष्फल न माननेपर मुक्त्यभावका प्रसङ्ग—अब शङ्काकार कह रहा है कि यदि ऐसा कहो कि वेदनीय कर्म यदि निष्फल हो गया तो फिर उसे क्यों मानते हो कि वेदनीय कर्म है। फिर मानना चाहिए कि ५ कर्म नहीं रहे- चार घातिया कर्म और एक वेदनीय कर्म। ५ कर्मोंका अभाव मानो। समाधानमें कहते हैं कि यह कहना ठीक नहीं। कर्म फल दिया ही करते हैं ऐसी हठ करने वाले प्रभुके अन्त समयकी दशापर ध्यान दें कि जब आयु कर्मसे अधिक वेदनीय आदिक कर्म हैं और अपना फल देनेमें समर्थ ही हैं एक हठ ही अगर रखा है तो फिर बतलावो मुक्तिका अभाव कैसे न होगा ? आयु खतम और वेदनीय फल दे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रहे यह भी विडम्बना समझमें आ सकती है क्या ? यदि कहो कि आमुसे अधिक जो जो वेदनीय रहेगी वह फल देनेमें समर्थ नही है तो फिर उनका कर्मत्व नही रहा, फिर उनको घटानेके लिए लोकपूरण आदिक समुद्घात करना व्यर्थ हो गया। इससे वेदनीय तो है, किन्तु मोहनीयके मिटनेपर असाता आदिकका फल देनेमें वे असमर्थ हैं यही सीधा मान लो। यदि कहो कि अपने तपश्चरण अनुष्ठान आदिकके कारण उनमें सामर्थ्य रुक गई इसलिये समान हो जाते हैं तो वहीं यहांके वेदनीयमें भी लगा लो।-घातिया कर्म नष्ट हो गए, मोह दूर हो गया तो अब वह वेदनीय अपना फल नही दे सकता है। मोहापेक्ष वेदनीय कर्मोदय ही फल देनेमें समर्थ हो सकता है। कारण तो है नही और कार्यकी उत्पत्ति मानोगे तो प्रभुके इन्द्रियज्ञान और रागादि-भावके सद्भाव आ जायगा।

क्लेशानुभूतिकी इच्छानुसारिता—हम आप लोग भी जब मोह सताता है, ख्याल बनाते हैं तब अधिक भूखकी पीड़ा होती है और जब भूखका ध्यान ही नहीं रहता तो फिर वहां भूखकी पीड़ा नही होती है। कदाचित् थोड़ी सी होती भी है तो वह शान्त हो जाती है। परन्तु जो तीन चार बार खाने वाले लोग हैं उनका चूंकि ध्यान उस ओर बना रहता है इस कारण उन्हें भूखकी वेदना अधिक सताती रहती है। यदि कभी तीन चार बार खानेको न मिल पाय तो वे विह्वल हो जाते हैं। तो एक उपयोग देनेकी बात है, अभी आपके शरीरमें कोई फोड़ा फुंसी हो जाय, और आप उसका बार बार ध्यान दें, ख्याल बनायें तो आपको उसकी अधिक पीड़ा महसूस होगी। और यदि आप उसकी ओरसे अपना उपयोग हटा लें उसका ध्यान ही न रखें तो वह वेदना फिर उतना अधिक नही सताती है। तो चूंकि हम आप लोगोंके यहांकी चीजोंमें मोह लग रहा हैं इस कारण वेदनायें सता रही हैं।

अनन्तज्ञानानन्दपुञ्ज प्रभुस्वरूपके ध्यानमें समस्याओंका समाधान—प्रभु अरहंत देव तो अब चार घातियाकर्मोंसे रहित हो गए, उनके अब किसी प्रकार की वेदनाएँ ही नहीं रही। इस कारण वे अनन्तशक्ति अनन्त आनन्द आदिकसे तृप्त रहा करते हैं। प्रभुके स्वरूपपर जब दृष्टि देते हैं तो ये सारी बातें समझमें आती हैं। हम आप भी ज्ञानानुभव करके उस आनन्दका अनुभवन कर सकते हैं। उमसे आत्यन्तिक अधिक विशिष्ट निर्मल अनुभवन और स्थिरता प्रभुमें हुआ करती है। हां प्रभुके अब इन्द्रियजन्य ज्ञान नहीं रहा, उन्हें अतीन्द्रिय ज्ञान हो रहा है। तो प्रभुका स्वरूप जानें और वे समस्त संकटोंसे रहित केवल ज्ञानपिण्ड हैं, इस तरहका ध्यान बनायें और अपना भी स्वरूप ऐसा ही है, इस तरहका ध्यान बनायें तो इससे मोक्ष मार्गमें बढ़नेमें बहुत सहायता मिलती है, प्रकृत समस्या भी सुलझ जाती है।

सहकारी मोहके अभावमें वेदनीय कर्मकी निष्फलता—सकल परमात्मा के चारों घातियाकर्म तो नहीं हैं किन्तु चार अघातिया कर्म हैं। अघातिया कर्मोंमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वेदनीय कर्म भी हैं, उनका उदय भी है तो उसका उदय होनेके कारण सकल परमात्माके कवलाहार होना चाहिये क्योंकि वेदनीयके उदयमें भूख लगती है और भूखका परिहार है भोजन। ऐसी शंकायें रखने वालोंके प्रति नाना आपत्तियाँ दिखाई गई हैं। अब शंकाकार कहता है कि ये आपत्ति देना कि कारणके बिना कार्य हो तो भगवान के इन्द्रियजन्य ज्ञान भी होना चाहिये, रागादिक भी होना चाहिए। यह बात यों सम्भव नहीं है कि ज्ञानावरणको क्षयोपशम तो अब रहा नहीं। प्रभुके ज्ञानावरणका क्षय हो गया है और मोहनीयकर्म सहकारी जो था वह भी नहीं रहा, उसका भी अत्यन्त क्षय हो गया, इसलिए इन्द्रियां अपने कार्यमें व्यापार नहीं करतीं। भगवानके शरीरमें नाक, आँख, कान आदिक द्रव्येन्द्रियाँ तो ज्योंकी त्यों हैं और विशिष्ट रूपवान हैं लेकिन अपने कार्यमें वे व्यापार नहीं कर सकती, क्योंकि मोहनीय कर्म सहकारी रहा नहीं। ऐसा कहनेपर समाधान देते हैं कि इसी कारण तो वेदनीयका भी व्यापार न मानना चाहिये क्योंकि वेदनीयके सहकारी हैं मोहनीय। सो मोह न होनेसे वेदना भी नहीं, वेदनाका प्रतिकार भी नहीं। जो अपने आपमें अत्यन्त विरक्त हैं, परपदार्थों से भी अत्यन्त विरत हैं ऐसे विरत व्यामोह जीव विषयके लिये किसी भी चीजको ग्रहण करने या कुछ हटानेके लिये प्रवृत्ति नहीं करता। प्रयोग है, अनुमान बना लिया जाय कि जो जिस विषयमें अत्यन्त निर्मोह होगा वह उस पदार्थको ग्रहण करनेमें या उसको हटानेमें मेटनेमें प्रवृत्ति नहीं रखता। जैसे जिस माताका किसी पुत्रसे मोह बिल्कुल दूर हो गया तो उसको ग्रहण करने और छोड़नेके लिये प्रवृत्ति भी नहीं होती तो मोहसे अत्यन्त व्यावृत हैं भगवान। वे भोजनको कैसे ग्रहण करें और क्षुधा आदिक का प्रतीकार करनेकी प्रवृत्ति कैसे करें? अगर करते हैं प्रवृत्ति प्रभु तो वे मोही सिद्ध हो जायेंगे। जो पुरुष भोजन ग्रहण करनेका प्रवर्तन करते हैं वे मोही हैं जैसे हम आप लोग ऐसे ही शंकाकारने मान लिया कि प्रभु केवली भी भोजन करते हैं तो फिर उन प्रभुमें सर्वज्ञता कहाँ रही। वे भगवान भी इन गलियोंमें फिरने वाले साधारण जनोंकी तरहसे ही हो गए।

प्रभुमें बुभुक्षाका प्रसङ्ग होनेपर रिरंसाका भी प्रसङ्ग – अब शङ्काकार से कहा जा रहा है कि यह जो भूख है, यह मोहनीयकी अपेक्षा न रखकर मात्र वेदनीयका काम नहीं है जिससे कि मोहरहित भगवानमें भी वेदनीय भूखको सम्भव बता सकें। भूखका अर्थ क्या है? कोई कहे कि कैसी होती है वह भूख जरा दिखावो तो सही, तो क्या कोई उस भूखको दिखा सकेगा? भूखका अर्थ क्या है? इसे संस्कृतमें कहते हैं बुभुक्षा। जिसका अर्थ है भूख अर्थात् भोजन करनेकी इच्छा। तो भगवानके मोहनीयका अभाव है इसलिए उनके बुभुक्षा हो ही नहीं सकती, खानेकी इच्छा हो ही नहीं सकती। खानेकी इच्छाका नाम है भूख। यदि खानेकी इच्छारूप बुभुक्षा मोहकी अपेक्षा किए बिना केवल वेदनीयका ही कार्य मान लिया जाय तो इच्छाका स्वागत करवा दिया जानेसे फिर उनके रिरंसा भी होना चाहिये। रिरंसाके मायने है विषय

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रमण करनेकी इच्छा। जब मोहके बिना भोजनकी इच्छा हो गई तो मोहके बिना साधारण गृहस्थोंकी भाँति रमणकी इच्छा मान लीजिये फिर आप स्त्रकलित प्रभुमें। परन्तु प्रभुमें यह तो कभी भी सम्भव नही। बुभुक्षा भी सम्भव नही। तो कबलाहार की तरह स्त्री आदिकमें भी प्रवृत्तिके प्रसङ्ग आनेसे फिर इस प्रभुमें और उन साधारण जनोंमें फर्क क्या रहा? तो जैसे रिरंसा मोहके न होनेसे नही है. प्रतिपक्ष भावनासे नही है, दूर हो गई इसी प्रकार भोजनकी इच्छा भी कभी नही होती है इच्छा विनष्ट हो गई। जैसे स्त्री आदिककी आकांक्षा निर्मोह ज्ञानके भावसे विनष्ट हो जाती है और यह संभव नहीं कि इच्छा न हो फिर भी प्रवृत्ति हो। यदि कहो कि भूखकी इच्छा नही है फिर भी कबलाहार करते हैं तो यों भी कोई कह डाले कि स्त्रीमें रमण करने की इच्छा नहीं है फिर भी स्त्रीमें रमण करते हैं। तो प्रभुमें कबलाहार बिल्कुल सम्भव नही है यह बात कही जा रही है।

अनन्तानन्दमय प्रभुमें दुःखरूप क्षुधादि बाधाका अभाव – यदि ऐसा कहो कि भाई इच्छा वाली भूख तो नही है पर भूख है इसलिए निर्मोहमें भी भूख सम्भव है। उत्तर देते हैं कि खैर, विना इच्छाके भी भूख होना मान लो जो कि होती तो नही है, तो भी यह बताओ कि वह भूख दुःखरूप है कि सुखरूप है? तो अनन्त सुख वाले भगवानमें यह भूख कैसे सम्भव है? देखो जिसका जो बलवान विरोधी मौजूद है वहां उसका कारण भी हो तो भी वह प्रकट नहीं हो सकता। जैसे अत्यन्त गर्म प्रदेशमें शीतका कोई कारण भी मौजूद हो तो भी शीत नही हो सकता। जैसे वहाँ बहुत तेज अग्नि जल रही है. जिस कमरेके अन्दर और वहाँ ठंढा करने वाली मशीन रख दी जाय तो वहां मशीन काम नही कर सकती, क्योंकि विरोधी बलवान मौजूद है, इसी प्रकार क्षुधा आदिक दुःखोंका विरोधी बलवान है अनन्त आनन्दका अनुभव। तो उसके रहते हुए क्षुधा आदिक दुःख उत्पन्न हो जायें यह कभी सम्भव नहीं।

समवशरणमें स्थित ही प्रभुके कबलाहार माननेपर मार्गविनाश— अब कुछ फुटकर बातें सुनो! मानलो कि वेदनीय कर्म है और भूखका फल देने वाला है, पर यह बताओ कि उस भूखके कारण वे भगवान समवशरणमें बैठे हुए ही खा लेते हैं या चर्या करके खाते हैं? यदि कहो कि समवशरणमे बैठे ही वे खा लेते हैं तो उन्होंने आहारविधिका मार्ग नष्ट कर दिया। आहार तो चर्याविधिसे लिया जाता है और उन्होंने वहां ही अपने घरमें बैठे हुए भोजन कर लिया तो फिर उन्होंने खण्डन कर दिया इस आहारविधिका।

समवशरणस्थित प्रभुके कबलाहार माननेपर अन्य दोष—दिगम्बर जैन सिद्धान्तमें तो आहार माना ही नहीं गया, वहाँ प्रश्न क्या उठाना? श्वेताम्बर सिद्धान्तमें जो आहारविधि बतायी गई कि घरोंसे भोजन माँग लाये और फिर किसी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जगह बैठकर खा लिया, तो ऐसी वह आहारकी विधि तुम्हारे कल्पित प्रभुमें न रही। दूसरी बात यह है कि भूख लगी तो उसके बाद यदि तुरन्त आहार न मिले तो वे प्रभु उदास हो जायेंगे, कमजोर हो जायेंगे। तो जैसा ज्ञान समर्थ अवस्थामें रह सकता था वैसा ज्ञान कमजोर अवस्थामें तो न रहेगा ज्ञानमें कमी आ जायगी। तो फिर मार्गका उपदेश करना कैसे सम्भव है? यदि यह कहो कि भगवानके जब असाता वेदनीयका उदय आता है, भूख होती है तो देवता लोग उनका आहार सम्पादित कर देते हैं, उसकी विधि वहीं बना देते हैं; तो कहते हैं कि यह बात तो कपोलकल्पित है। यदि कहो कि आगममें लिखा है तो ऐसा आगम बताओ कि हमें भी मान्य हो और तुम्हें भी। ऐसा तो कहीं नही लिखा कि देवता लोग प्रभु केवलीका आहार सम्पादित कर देते हैं। साधु अवस्थामें भी देवता लोग आहार दें तो वे आहार न लेंगे। यदि यह कहें श्वेताम्बर जैन कि हमारे आगममें लिखा है कि जब भगवानके क्षुधा होती है तो देवता लोग ही समवशरणमें उन्हें आहार रच देते हैं तो तुम्हारे आगममें यह भी तो लिखा है कि किसी प्रकारका उपसर्ग भी प्रभुपर नहीं होता। तो फिर यह भूखका उपसर्ग कैसे हो गया? यह भी लिखा है कि भूखके उपसर्गका प्रभुमें अभाव है तो फिर यह विकल्प न बना कि वे प्रभु समवशरणमें बैठे ही भोजन कर लेते हैं।

घर घर जाकर व एक घरसे भिक्षा लेनेपर प्रभुत्वका नाश— देखो भोजनकी बात प्रभुमें किसी प्रकार सम्भव नहीं है और श्वेतांबर सिद्धांतमें लोग मान रहे हैं तो उनसे पूछा जा रहा है कि वे प्रभु आहार विधिसे भोजन करते हैं क्या? आहारके लिए जाते हैं क्या? तो यह बताओ कि घर-घर जाते हैं या एक ही घरसे भिक्षा ले आते हैं। क्योंकि उन्हें तो ज्ञान होगा ही कि आज हमारी भिक्षा इस घरमें मिलेगी। तो जिस घरका ज्ञान है उसी घरमें जाकर भिक्षा ले लेते हैं या दसों घरोंमें जाकर भिक्षा ले लेते हैं? शङ्काकारके सिद्धान्तमें कहा है कि साधुकी चर्यामें घर घर से भोजन लाया जाता है और फिर उसे इकट्ठा करके अपने स्थानपर बैठकर खाया जाता है। यद्यपि शीघ्र सुननेमें भला लग सकता है कि बड़ा ठीक करते हैं। थोड़ा-थोड़ा इधर उधरसे मांग लिया और फिर बैठकर खा लिया, तो आजकल शुद्ध भोजन करनेमें असुविधा चली इससे चाहे अच्छा मान लो लेकिन उसमें अनेक आपत्तियां हैं। अनेक प्रकारके बर्तन रखने पड़े, उनमें मूर्छा जगे, उनके धरने उठानेकी सम्हाल करनी पड़े। और अपने आप भोजन किया तो स्वच्छन्द होकर किया। वहां अन्तराय आदिक का कोई विचार नहीं रहता। जैसे गृहस्थ लोग टिफिन बक्समें अपना खाना रख लेते हैं और जब चाहे उसे निकालकर खा लेते हैं। तो ऐसी ही स्वच्छन्दता उन साधुवोंमें हो जाती है। साधु यदि बर्तन रखेगा तो बर्तनोंको धोना सुखाना उठाना रखना होगा, साधु यदि बर्तन रखेगा तो उसे कभी कभी उन बर्तनोंके प्रति दूसरोंसे लड़ना झगड़ना भी पड़ेगा। यों अनेक आपत्तियां आ जावेंगी। अरे साधुजन तो निर्ग्रन्थ होते हैं, पिछी और कमण्डल इन उपकरणोंके अतिरिक्त अन्य कोई प्रकारका परिग्रह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वे नहीं रखते हैं। यहां तक कि शास्त्रोंके बन्डल भी बनाकर वे साथमें नहीं रखते। शास्त्र जहां जो मिले उससे वे आत्मस्वाध्याय करते हैं, सहज ही कोई एक पाठ पुस्तक रही जाय शास्त्रों तक का भी परिग्रह वे नही रखते। ध्यानकी स्थिति भी वास्तवमें तब ही सही बन पाती है जब कि निष्परिग्रहता हो। तो साधुजन यदि भोजनके लिए बर्तन भांड़े आदिका परिग्रह रखें तो फिर उनके ध्यानकी स्थिति कैसे बन सकती है? श्वेतपट नियमानुसार साधु यत्र तत्र भिक्षा माँगने जाया करते हैं, उन्हीसे पूछा जा रहा है कि वे प्रभु यदि कवलाहार करते है तो उन्हें तो यह ज्ञान रहता ही है कि हमारा आहार आज अमुक अमुक जगह होगा, तो वे वहां जाकर आहार ले आते हैं या घर घर जाकर भिक्षाकी खोज (एषणा) करते हैं? यदि यह कहो कि वे प्रभु आहार लेनेके लिए घर घर जाते हैं तो इसके मायने है कि भगवानके अज्ञान है उन्हें पता ही नहीं कि हमारा कहां कहां भोजन मिलेगा और यदि यह कहो कि प्रभु तो उस ही एक घर जाते हैं और आहार अपने निवास स्थानपर लाकर कर लेते हैं तो इसमें फिर भिक्षाशुद्धि नही रहती है।

मांस, जीववध, विष्टादिकका साक्षात्कार करते हुए भी भोजन लेने पर निष्करुणता व हीनताका प्रसङ्ग— और भी पूछा जा रहा है शङ्काकारसे कि वे प्रभु जब भोजन करते हैं तो उनके केवलज्ञान रहता है या नदारत हो जाता है? यदि कहो कि सदा केवलज्ञान रहता है तो भोजन करते समय भी सारी दुनियां ज्ञानमें रहती है कि नहीं, अर्थात् शिकारी लोग, जीववध माँस आदिक गन्दी चीजें और ये मल मूत्रादि अपवित्र चीजें ये भी सब उस समय ज्ञानमें रहती है या नहीं? यदि ये सब चीजें उस समय ज्ञानमें रहती हैं तो इसके मायने है कि उन प्रभुमें करुणा नहीं है यहां तो साधारण गृहस्थ लोग भी यदि किसी बिल्लीको किसी चूहेको खाती हुई देख लेता है तो वह भी करुणावश अपने सामने रखा हुआ भोजन भी छोड़ देता है। पर वे भगवान यदि समस्त विश्वका ज्ञान रखते हुए भी यदि भोजन करते समय भोजन को न छोड़ दें तो वे तो करुणारहित माने जायेंगे। यदि कहो कि उस भोजन करते समय उन्हें सारा विश्व ज्ञानमें तो आता है फिर भी वे भोजन करते हैं तो यहांके मामूली आदमियोंसे भी वे प्रभु हीन हो गए।

प्रभुकी विशुद्ध ज्ञानवर्तता—सकल परमात्मा प्रभुका स्वरूपतो अत्यन्त निर्मल है, वे मनुष्य शरीरमें इस समय स्थित हैं। केवलज्ञान होनेके बाद जब तक आयु समाप्त नहीं होती तब तक वे केवली भगवान शरीरमें रह रहे, और उनका वह शरीर परमौदारिक हो गया। उनका वह शरीर समस्त प्रकारकी अपवित्रताओंसे रहित हो गया। तो ऐसे पवित्र शरीरमें स्थित हैं वे प्रभु, पर उनका स्वरूप क्या है, उनका अनुभवन क्या है, उनका कार्य क्या चल रहा इस पर भी तो दृष्टि दें। भगवान केवलज्ञान ज्योतिके पुञ्ज हैं ना, उनमें क्या बातें बीत रही हैं इसे भी तो निरखें?

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उनके केवल जानन जानन ही चल रहा है। तीन लोक तीन कालके समस्त पदार्थ निर्विकल्प होकर ज्ञेय हो रहे हैं। हम आप जिस तरह परपदार्थोंका ज्ञान करते समय अनेक प्रकारकी कल्पनायें करते, अनेक प्रकारके क्षोभ मचाते, ऐसी बात अब उन प्रभुमें नही रही। वे तो जो हैं सो यथार्थ रूपसे जानते हैं। जैसे हम आप लोग जानते हैं कि यह हमारा घर है, यह अमुकका घर है। इस प्रकारसे प्रभु नहीं जाना करते हैं। हम आपके जाननेमें तो अनेक प्रकारके विकल्प, अनेक प्रकारके क्षोभ मचा करते हैं, पर प्रभुके निर्विकल्प, निस्तरंग ज्ञान है। तो ऐसी दशामें प्रभुमें भूखप्यासादिककी वेदनायें कहाँ सम्भव हैं। ये वेदनायें तो एक उपसर्ग हैं।

ज्ञानज्योतिमात्र अपनी प्रतीति करनेका कर्तव्य—भैया! हम आप भी अपने बारेमें सोचें कि हमें आखिर कैसा बनना चाहिए कि जिस स्थितिमें मेरेको कोई भी सङ्कट न रहे। ऐसा तो सभी लोग सोचते हैं मगर भली विधिसे नही सोचते। चाहते तो सभी ऐसा हैं कि मैं अपनी ऐसी पोजीशन बना लूं कि फिर कोई सङ्कट न आ सके। उसीके लिए प्रयास करते हैं पर अन्य वस्तुपर हमारा अधिकार है नहीं और प्रयत्न करते हैं अन्य वस्तुके सम्बन्धमें। इसलिए उसमें सफलता नहीं मिल सकती। हमारा एक सङ्कट मिटा कि दूसरा सङ्कट सामने आ गया, तो इससे अच्छा यह है कि हमारी ऐसी स्थिति बने कि फिर एक भी सङ्कट न रहे। पर निर्णय तो कर लो कि वह कौनसी स्थिति है जिसमें फिर कोई सङ्कट नही रहता। वह स्थिति है कैवल्यकी। मैं आत्मा आखिर हूँ कौन। मैं जो हूँ वह शरीर नहीं है। यह बात तो स्पष्ट विदित है कि जब जीव शरीरको छोड़कर चला जाता है तो वह शरीर मुर्दा हो जाता है वह शरीर जीवरहित होजाता हैं उसे फिर सभी लोग जीवरहित समझकर ही निःशक होकर जला डालते हैं। तो मैं देह नही हूं। मैं तो स्वतन्त्र सत्तावान आत्मा हूँ। उस मेरेका स्वरूप क्या है? किस तत्त्वसे रचा हुआ हूँ। उसमें क्या तत्त्व भरा है? बस एक ज्ञान ज्योति, ज्ञान स्वरूप, ज्ञान प्रकाश भरा है। अपने अन्दर निरखो तो कुछ ध्यानमें आयगा कि यह है ज्ञान ज्योति जाननमात्र। जिस स्वरूपको पकड़कर नहीं बता सकते, किन्तु समझमें आयगा। ऐसा जो ज्ञानमात्र भाव हो, ऐसा ज्ञान भावात्मक मैं आत्मतत्त्व हूँ तो ज्ञानमात्र यह आत्मतत्त्व जिसके पूर्ण निर्मल प्रकट हो गया है पूर्ण विकास जहां हो गया है, ऐसी है प्रभुकी स्थिति, जहाँ कोई कल्पना नहीं, किसी ओरका विचार नहीं, तर्क नहीं, रागद्वेष नहीं। ऐसी मलरहित जो स्थिति है उस स्थितिमें सङ्कट नहीं है।

शरीररहित अवस्थामें सर्वथा निःसङ्कट परिणमन—मोटे रूपसे विचारो तो लोकके सारे सङ्कटोंकी जड़ तो यह शरीर है, शरीर है तभी भूख लगती है तभी ठंड, गर्मी लगती है। तभी सभीको इज्जत पोजीशन सम्मान अपमान आदिककी बातें महसूस होती हैं। तो इन सभी चीजोंके कारण इस जीवको दुःखी होना पड़ता है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

शरीरपर ही दृष्टि होनेके कारण लोग अपने नामकी चाह करते हैं। आज जो धन वैभवके पीछे लोग इतनी होड़ मचा रहे हैं और अनेक प्रकारके दुःख उठा रहे हैं उसका कारण यह शरीर है। तो इस लोकके समस्त दुःखोंका मूलकारण यह शरीर है। शरीर ही न रहे तो फिर कोई सङ्कट ही नहीं रह सकता। आप सबकी समझमें तो बात आ रही होगी ? मगर कभी ऐसी भी इच्छा जगी कि नहीं कि मैं भी इन समस्त दुःखोंसे छूट जाना चाहता हूँ। मेरे शरीर भी न रहे, मैं तो इस शरीरसे रहित निर्मल ज्ञानप्रकाश मात्र, ज्ञानपुञ्ज रह जाऊं। जो ऐसे रह गए उन्हींका नाम भगवान है। वे भगवान सर्व सङ्कटोंसे रहित हैं। इस विशुद्ध स्वरूपके चिन्तनसे समस्त सङ्कट सदा के लिए विदा हो जाते हैं। कितने ही सङ्कटोंमें फसा हो कोई मनुष्य, सङ्कट तो असल में है नहीं, कल्पनायें करके सङ्कट मान लिया है पर कल्पनायें करके भी माने गए सङ्कट कैसे ही विकट आ गये हों, लेकिन यह आत्मा उन सङ्कटोंके विषयभूत बाह्य पदार्थोंसे भिन्न अपने आपको निरखकर उसका लगाव छोड़कर जैसे ही वह अपने सहज ज्ञाकस्वरूपके अनुभवनमें आता है आप बतलावो उस समय उसके कोई सङ्कट है क्या ? कोई भी तो सङ्कट नहीं है। हमें भी यदि उन समस्त सङ्कटोंसे सदाके लिए दूर होनेकी इच्छा है तो सङ्कटोंसे दूर होनेका जो यह ज्ञानानुभवरूप यत्न है। यह तो कई बार किया जाना चाहिये ना, तो इस ज्ञानानुभवके यत्नसे हम आपमें भी अन्तरङ्गमें ऐसा बल प्रकट होगा कि किसी समय समस्त सङ्कटोंसे मुक्त हो जायेंगे। यही है समस्त सङ्कटोंसे पार हुएकी अवस्था।

जीवबध, माँस आदिका साक्षात्कार करते हुए भोजन करनेमें प्रभुकी दोषमयता—अब शंकाकार कह रहा है कि जैसे हम लोग यहां पर कुछ भी चीज शुद्ध अशुद्ध देखी हुईका स्मरण करते हुए भी भोजन करते हैं इसी प्रकार केवली भगवान इन शुद्ध अशुद्ध पदार्थोंका साक्षात्कार करते हुए भी भोजन कर लिया करते हैं। समाधानमें कहते हैं कि यह असङ्गत बात है। हम लोगोंकी सर्वज्ञ भगवानके साथ कोई तुलना नहीं की जा सकती है। वे परम चारित्र पदपर प्राप्त हैं। जिनके यथाख्यात संयम प्रकट हो गया है, जिनके रागद्वेषकी कणिका भी नहीं रही, जो अनन्त आनन्दसे सदा तृप्त रहा करते हैं ऐसे सर्वज्ञ परमात्माके साथ अपनी तुलना करके अपनी करतूतोंकी तरह प्रभुकी करतूत मान लेना सङ्गत बात नहीं है। और फिर देखो कि हम लोग भी जब किसी प्रकारसे जिस मार्गमें चल रहे, मार्गमें जो चीज दिख गई किसी भी प्रकारसे किसी भी देखी हुई अशुद्ध वस्तुका स्मरण कर लेते हैं और स्मरण करते हुए भी भोजनका परित्याग करनेमें असमर्थ होकर भोजन करते हैं तो दोष ही तो माना जाता है। यथार्थ बात तो यह है कि हम लोग भी जब मांस आदिकका स्मरण हो जाय तो उस कालमें भोजन नहीं करना चाहते, पर प्रभुको स्मरण भी हो रहा, जानकारी भी चल रही और फिर भी भोजन नहीं छोड़ सकते भोजन कर लिया तो आखिर दोष ही तो रहा। और फिर दोषकी शुद्धिके लिए

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

गुरुवोंके समीप निंदा करते हुए, जो गुरु प्रायश्चित बतायें वे साधुजन करते हैं, साधारण गृहस्थ भी करते हैं और जो ऐसी स्थितिमें अशुद्ध पदार्थका स्मरण करते हुएमें भोजनका परित्याग करनेमें समर्थ हैं वे विरक्त पुरुष आहारशुद्धिमें निर्दोष विधिका अपना संकल्प बनाए हुए हैं, वे परम विरक्त पुरुष हैं। उन्होंने शरीरकी अपेक्षा भी छोड़ दी है। जिह्वाको जिन्होने वश कर लिया है। जो अन्तरायके विषयमें बहुत निपुण बुद्धि रखते हैं, जिन्हें समस्त दोषोंका परिज्ञान है कि इन्हें छोड़ देना चाहिए, ऐसे साधुजन अशुद्ध पदार्थोंका स्मरण करते हुए भी भोजन नही करते।

प्रभु अकेले या ससंघ भिक्षा करनेमें दीनता व सावद्य दोषका प्रसङ्ग—अब शङ्काकारसे पूछा जा रहा है कि तुम्हारे केवली प्रभु भोजन करते हैं तो यह बतलावो कि वे प्रभु अकेले ही भोजन करते हैं या अपने संघमें जो सैकड़ोंकी संख्या में शिष्यजन रहते हैं उनके साथ भोजन करते हैं ? जैसे यहाँपर भी तो कुछ लोग इकट्ठे बैठ जाते हैं, गप्पे भी करते रहते है और खाते भी जाते हैं। उस तरह से बैठकर प्रभु भोजन करते हैं या सभी शिष्योंसे अलग होकर अकेले ही भोजन करने चले जाते हैं ? यदि कहो कि प्रभु अकेले ही भोजन करने चले जाते हैं तो फिर उन प्रभुमें उदारता कहां आयी ? जैसे कोई खानेका आसक्त पुरुष यहां भी अपने साथियोंको छोड़कर अकेला ही भोजन करने चला जाता है और भोजन कर आता है उसी तरहसे यदि प्रभु भी करते हैं तो उनमें प्रभुता कहां रही। वे तो दीन ही रहे। यदि कहो कि शिष्योंके संगमें बैठकर भोजन कर आते हैं तो फिर उसमें सावद्यका प्रसङ्ग आ गया, राग हो गया, पूछाताछी हो गई, एक दूसरेका निरखना हो गया और विधिमें भी स्नेह आदिक आनेसे पाप लगा।

प्रभुके भोजन करके प्रतिक्रमण करने या न करनेमें सदोषताका प्रतिपादन—अच्छा—एक बात और भी बतलावो कि प्रभु मानलो तुम्हारे सिद्धान्तसे भोजन कर लेते हैं तो फिर वे भोजन करके प्रतिक्रमण आदिक करते हैं या नही। भोजन कितना ही निर्दोष विधिसे किया जाय, भोजन करना स्वयं दोषमयी कार्य है, इसीलिए तो साधुजन भोजन करनेसे पहिले भी और भोजन करने के बाद भी प्रतिक्रमण किया करते हैं। जैसे सामान्यतः आहार करनेके बाद सिद्धभक्ति पढ़कर कार्योत्सर्ग करना ये सब साधुजन करते हैं। क्यों करते हैं कि भोजन करने में जो कुछ स्नेह जगा है, कही पर दृष्टि जगी है, स्वभावकी सुधि भूलकर उस ओर लग गए हैं। वे सब दोष मेरे दूर हों उस अभिप्रायको लेकर प्रतिक्रमण किया जाता है, णमोकार मंत्रका स्मरण किया जाता है। आहार ग्रहण करनेके पहिले जो कार्योत्सर्ग किया जाता है, हमारे ख्यालसे उसका प्रयोजन यह है कि भोजन जैसा विकल्प विपत्ति वाला काम जिसमें हम पड़ रहे हैं, जिस काममें हम लगने जा रहे हैं उस काम में दोष है, कही भोजन करके मेरेमें प्रमाद न उत्पन्न हो जाय, मैं प्रमत्त न बन जाऊं,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कहीं मेरी सावधानी न खतम हो जाय, कहीं मेरे प्रभुकी सुध न हट जाय, कहीं मैं उस भोजनका रागी न बन जाऊं, आदि। इस प्रकारके दोष भोजनमें समझकर वे साधुजन कार्योत्सर्ग किया करते हैं। तो ज्ञानी ध्यानी साधु पुरुषोंने कितनी ही सावधानियां रखकर भोजन किया लेकिन उस प्रसङ्गमें चूंकि वह काम ही ऐसा है कि कुछ राग भी होता, किसी वस्तुके स्वादमें भी थोड़ा पहुंचते, सो ये सब दोष भोजन करते समय हो गए। अब उस भोजनसे निवृत्त होनेके बाद एकदम अपनी सुधि आती है और उन गल्तियोंका ख्याल होता है तो उससे सीधे प्रभुकी शरणमें आने उपयोगको पहुँचाते हैं और उस समयमें प्रभुके निराहार स्वरूपका विचार करके अपने आपको निहारते हैं। कहाँ तो मेरा ऐसा निराहार स्वभाव था। कहां तो अपने ज्ञानानन्द स्वरूपमें रत रहने का काम था और यहां कितना विकल्पोंमें विपत्तियोंमें आनेको फंसा डाला और इस पर्यायमें मैं कैसा एक बन्धनमें जकड़ा हुआ हूं कि प्रमाद किए बिना यहां गुजारा नहीं हो रहा है। यों वे साधुजन अपनी निंदा करते हुए प्रभु स्मरण करते हैं और जो दोष हो गए वे मेरे दूर हों, इस प्रकारकी भावना रखते हुए कार्योत्सर्ग करते हैं।

भोजन करके प्रतिक्रमण करने व न करनेमें प्रभुके सदोषत्वका विवरण शंकाकारसे पूछा जा रहा है कि तुम्हारे प्रभु यदि कबलाहार करते हैं तो भोजन करके फिर प्रतिक्रमण करते हैं या नहीं ? यदि कहो कि प्रतिकमण करते हैं तो इसका अर्थ यह है कि प्रभुने दोष किया ! प्रभु दोषरहित होते तो प्रतिक्रमणकी आवश्यकता क्या थी ? प्रतिरमण कहते ही उसे हैं जो लगे हुए दोषको दूर करनेके लिए प्रायश्चित्त किया जाय। और यदि कहो कि प्रतिक्रमण नहीं करते हैं तो बतलाओ भोजनके कार्य से उत्पन्न हुए जो दोष हैं उन दोषोंको प्रभु कैसे दूर करें ? जब भोजन मात्रकी कथा करनेसे भी साधुजन प्रमादी माने गए हैं और तुम्हारे कल्पित अरहंत भगवान भोजन करते हुए भी प्रमत्त न कहलायें, प्रमादवान न कहलायें तो यह तो केवल कथन मात्र है। तुम ऐसे सदोष स्वरूपको प्रभु मानकर भी चल रहे हो यह तुम्हारे घरकी श्रद्धा मात्र है। और, कहोगे कि हो जाते हैं वे प्रमत्त, कषायवान तो वे प्रभु कहां रहे, वे तो श्रेणिसे भी गिरकर प्रमत्त साधु हो गए।

प्रमादके परिहारका अनुरोध—प्रमादी उसे कहते हैं जो अपने आत्म-कल्याणके कार्यमें प्रमाद करे। कोई पुरुष घरमें आलसी पड़ा हुआ है उसका ही नाम प्रमाद न समझिये, कोई पुरुष खूब आरम्भ व्यापार रोजिगार आदिकमें लगा रहता है खूब स्नेह करके मौजसे रह रहा है तो क्या वह प्रमादी नहीं है ? अरे, ये सांसारिक काम कोई आत्माके काम नहीं हैं। ये हो गए तो उनमें राजी रहे, न हुए तो राजी रहो। धन कम है तो कुछ बात नहीं, अधिक हो गया तो कुछ बात नहीं, ये कोई बड़ी समस्यायें नहीं हैं, इनमें कुछ हर्ष विषाद न मानिये। सबसे बड़ी समस्या तो यह है कि जो अपने जन्म-मरणकी परम्परा चल रही है, इस जन्म-मरणकी परम्परा मेटनेकी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बात सोचिये ! मानलो, आपका मरण भी हो रहा हो तो वह भी कोई बड़ी समस्या नहीं है। ऐसे मरण तो अनन्त बार हुए, चलो एक मरण और सही। अरे, मरण करते करते तो मरण करनेमें अभ्यस्त हो जाना चाहिये। मरण करना कोई अनहोनी बात तो नहीं हो रही। तो मरणकी भी कोई बड़ी समस्या नहीं। सबसे बड़ी समस्या की बात है इस जन्ममरणकी परम्पराका चलना। बस इस जन्म-मरणकी परम्पराका निवारण करनेका यत्न कीजिये।

बड़ोंके कार्यकी सराहनामें बड़ोंका आदर—अच्छा आप यह बतलावो कि जिन बड़ोंको हम आप पूजते हैं - प्रभुको, अरहंतको सिद्धको, उन बड़ोंने जो काम किया है उस कामकी आप सराहना रख रहे कि नही ? अगर नहीं रख रहे तो पूजन क्या ? वह तो केवल एक रूढ़ि है, ढोंग है या और कुछ है। बड़ोंके कामकी सराहना हो रही हो चित्तमें तो समझना चाहिए कि बड़ोंके प्रति हमारा आदर है और जिनके कामकी सराहना नहीं वहाँ तो आदर न समझिये। प्रभुने क्या किया था ? वे भी हम आप जैसे ही पुरुष थे, पर उन्होंने वस्तुस्वरूपका यथार्थ ज्ञान करके, सही जानकारी के बलसे उन्होंने जो कि सहज प्रकृत्या होना ही चाहिए, परसे उपेक्षा की, अपने आपके उस सहज पवित्र ज्ञान ज्योति स्वरूपमें रुचि की और उस रुचिका प्रभाव यह था कि उनके निरन्तर यह प्रतीति रहती थी कि मैं तो केवल ज्ञानमात्र हूँ, यह जो बाहरमें दिखने वाला शरीर पिण्डोला दिखता है यह मैं नहीं हूं यहां तक कि अपने आपके अन्दर कर्म उपाधिके सम्पर्कके कारण जो रागादिक विभाव विकल्प वितर्क उत्पन्न हो रहे हैं यह भी मैं नहीं, केवलज्ञान ज्योतिमात्र हूँ, जो कि सर्व आत्माओंमें समानरूपसे विस्तृत है, जो सामान्य है, जहां कोई विकल्प नही, तरङ्ग नही ऐसा ज्ञानप्रकाशमात्र मैं हूँ। ऐसी सच्ची प्रतीति यदि अपने बारेमें हो तो फिर कषायें कहाँसे उत्पन्न हों, फिर सम्मान अपमान आदिककी बातें क्यों जगेंगी ? उसे फिर सङ्कट ही क्या रहा ? तो प्रभुने छद्मस्थ अवस्थामें निःसङ्कट ज्ञान ज्योतिमात्र विशुद्ध आत्मतत्त्वकी प्रतीति की, जिसके बलसे उत्तरोत्तर अपने ज्ञानस्वभावमें स्थित होकर अन्तर्बाह्य परिग्रहका जब लवलेश न रहा और केवल एक अंतस्तत्व की भावना की तो उस निर्विकल्प समाधिके बलसे उस परम शुक्ल ध्यानके बलसे उनके चार घातिया कर्म दूर हो गए और वे अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन अनन्त सुख, अनन्त शक्तिसे सम्पन्न हो गए। बतलावो प्रभुकी ऐसी स्थिति हम भी अपने बारेमें चाहते हैं या नहीं ? जैसे प्रत्येक पुरुष अपने बारेमें जीवनका कोई एकमात्र प्रोग्राम रखा करता है। मुझे जीवनमें करना क्या है आखिर। कोई लोग तो अपना प्रोग्राम बनाते हैं राष्ट्रका मिनिस्टर बननेके लिए, कोई लोग धनिक बननेका प्रोग्राम बनाते हैं अथवा कोई लोग कुछ थोड़ेसे आदमियोंका नायक बननेका अपना प्रोग्राम बनाते हैं। ये सभी लोग अपना कोई न कोई प्रोग्राम बनाते हैं, पर एकमात्र यदि यह प्रोग्राम बना लिया जाय कि निर्विकल्प ज्ञानस्वरूप मात्र स्थिति जो अरहंतदेवकी है, प्रभुकी है ऐसी ही स्थिति मेरी बने, बस मैं तो यहीं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मात्र हूँ, इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी बात मैं त्रिकालमें नहीं चाहता। ऐसा एकमात्र अपना प्रोग्राम बना हो तब तो समझिये कि प्रभुके हम अच्छे भक्त बन गए और तभी प्रभुके वन्दन करनेके अधिकारी हैं। प्रभुका स्वरूप वीतराग और परिपूर्णज्ञानानन्द मात्र है। किन्तु यहां शङ्काकार मान रहा है कि ऐसे ये प्रभु भी भोजन करते हैं। तो देखो ! सारे ऐब भोजनके साथ हैं। सो भोजनके प्रसङ्गसे वे प्रमादी हो गए, प्रमादी हो गए तो वे श्रेणीसे गिर गए। प्रभुता तो दूरकी बात है। वह तो श्रेणीके गुणस्थान में भी नही हैं, फिर उन्हें केवली कैसे कहा जायगा।

गुणस्थान—गुणस्थान १४ होते हैं। गुणस्थानके मायने है आत्माके गुणोंके स्थान याने कक्ष। आत्मामें दो मुख्य गुण हैं जिनके विपरीत रहनेसे संसारमें रुलना पड़ता है और जिनके विशुद्ध विकाससे संसारसे मुक्त हो जाते हैं। वे दो गुण हैं श्रद्धा और चारित्र। ज्ञान इसके साथ ही लगा हुआ हैं। जैसे जीवकी श्रद्धा यदि विपरीत हो—देहको माने कि यह मैं हूँ, धन वैभवको माने कि यह मेरा है अपने आपके अन्दर उठने वाले विकल्पोंको माने कि यह मैं हूँ तो यह सब उल्टी श्रद्धा है। रागी देवोंको माने कि ये प्रभु हैं, राग भरी अज्ञान भरी बातोंके लेकर जो शास्त्र लिखे हुए हैं उन्हें माने कि ये शास्त्र हैं, सारंभ सपरिग्रह साधुवोंको माने कि ये साधु हैं, इस प्रकारकी विपरीत श्रद्धा रहे तो ये बातें जीवको संसारमें भटकाने वाली हैं। और अगर श्रद्धा सही हो जाय तो इसके बलपर जीव मोक्षमार्गमें बढ़ता है। तो श्रद्धा और चारित्र इन दो गुणोंके कारण ये गुणस्थान बने हैं। साथमें एक योग भी है पर उसकी प्रधानता नहीं। उसका अन्तिम प्रतियोग एक सहज बात है इस कारण इन दो गुणों पर दृष्टि देकर विचार करें।

साधुतासे पहिलेके ५ गुणस्थान—जब जीवकी उल्टी श्रद्धा होती है तब उसका पहिला गुणस्थान माना जाता है, यह मिथ्यात्व गुणस्थान है और जब उसकी श्रद्धा सही हो जाती है, मैं ज्ञानमात्र आत्मा हूँ इस प्रकारकी उसकी प्रतीति हो जाती है तब उसे सम्यग्दृष्टि कहते है। ऐसा सम्यग्दृष्टि यदि कोई व्रत नही धारण कर रहा है तो उसे चतुर्थ गुणस्थान वाला माना जाता है। पहिले गुणस्थानमें मिथ्यादृष्टि और चतुर्थ गुणस्थानमें अविरत सम्यग्दृष्टि। कोई सम्यग्दृष्टि पुरुष अपने सम्यक्त्वसे चिगकर सीधे मिश्र अवस्थामें आ जाय कि जहां सम्यक्त्व और मिथ्यात्व मिले जुले परिणाम हैं। जैसे शक्कर और दही मिलाकर खाये तो कोई तीसरा ही स्वाद रहता है, न खालिश दहीका ही स्वाद मिलता है और न खालिश शक्करका ही। ऐसे ही यह सम्यग्मिथ्यात्वका परिणाम यह ऐसी तीसरी अवस्था है कि जहां न केवल सम्यक्त्वकी अनुभूति है और न केवल मिथ्यात्वकी। उनमें कोई सम्यग्दृष्टि गिरकर मिथ्यात्वमें आकर भी इस तीसरे गुणस्थानमें आता है। कोई सम्यग्दृष्टि सम्यक्त्वसे चिगकर अनन्तानुबन्धी कषायमें आ गया, पर अभी मिथ्यात्व नही जगा तो दूसरा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

गुणस्थान आ जाता है। यहाँ मुख्यतया प्रथम गुणस्थान और चतुर्थ गुणस्थानका स्वरूप जानलो। सम्यग्दृष्टि पुरुष यदि विषयोंसे एकदेश विरक्त है तो उसे समझना चाहिए कि यह पंचमगुणस्थानमें माना जाता है।

साधुजीवनके गुणस्थान—यह सम्यग्दृष्टि पुरुष अत्यन्त विरक्त होकर शरीर की भी अपेक्षा तजकर सब विषयोंका सम्पूर्णरूपसे परित्याग करके निर्ग्रन्थ होकर आत्मसाधनामें लगता है तो वह साधु कहलाता है। सो साधुजन अपने जीवनमें बहुत काल तक ६ठे गुणस्थानमें रहा करते हैं। छठे गुणस्थानका नाम है प्रमत्त विरत अर्थात् साधु हैं, विषयोंसे विरक्त हैं मगर उपदेश देनेमें, शिक्षा-दीक्षा देनेमें, आहार करनेमें इन कामोंमें लग जाते हैं तो वे प्रमत्त विरत साधु कहलाते हैं। प्रमाद आगया, आत्माके निर्विकल्प ध्यानमें नहीं ठहरे है लेकिन वे प्रमत्त विरत गुणस्थानमें देर तक नहीं ठहर सकते, फिर सावधान हो जाते हैं, फिर उनके अप्रमत्त अवस्था होती है। फिर प्रमादका परित्याग करके ७वें गुणस्थानमें आते हैं, वहाँ अधिक देर नहीं ठहरते, फिर प्रमत्त अवस्थामें आते हैं। जैसे भुलाने वाला पालना एक ही तरफ तो नहीं रहता, वह तो आगे और पीछे दोनों ओरको चलता रहता है। इसी प्रकार साधुका जीवन प्रमत्त अवस्थामें अप्रमत्त अवस्थामें यों एक घंटेमें सैकड़ों बार बदल-बदलकर प्रमत्तविरत—अप्रमत्तविरतमें चलता रहता है। यों उनका जीवन चला, यहां तक श्रेणी नहीं कही जाती। जैसे कहते कि श्रेणी मोड़कर यह साधु बहुत ऊंचे परिणामोंमें पहुँच गया। अभी श्रेणीकी बात नहीं आयी।

श्रेणीके गुणस्थान—सातवें गुणस्थानमें रहकर यदि साधुका बहुत ऊंचा परिणाम हो जाय तो वह बहुत ऊंचे गुणस्थानमें चढ़ता है, सो इसके ऊपर दो प्रकार की श्रेणी है—एक उपशम और एक क्षपक। जो कर्म साधुके लगे हैं उन कर्मोंका उनमें घातिया कर्मोंका विशेषतया उपशम करके जो ऊपर चढ़ते हैं वे उपशम श्रेणीमें जाते हैं और जो उन कर्मोंका क्षय करते हुए श्रेणी चढ़ते हैं वे क्षपक हैं। वे ८वें, ९वें, १०वें, १२वें गुणस्थानमें चढ़ते हैं। जो क्षपक श्रेणीसे चढ़ते हैं उनका नियमसे मोक्ष हो जाता है और जो उपशम श्रेणीमें बढ़ते हैं उन्हें ८वें, ९वें १०वें, ११वें गुणस्थान तक चढ़कर फिर वहाँसे नियमसे नीचे आना पड़ता है क्योंकि कषायोंका उपशम किया था, पर कषायें तो दबी हुई पड़ी थीं। जब तक उनके दबनेका समय रहता है तब तक तो परिणाम निर्मल रहे और जब वे कषायें उखड़ गईं तो परिणाम उनके ढीले हो गए तो वे १०वें, ९वें, ८वें, ७वें, छठवें गुणस्थान तो नियमसे आते हैं। यदि उस ही बीच मरण हो गया तो वह तुरन्त चौथेमें भी आ जाता है, देवगतिमें उत्पन्न होता है।

भोजन करनेके कारण प्रमत्त हो जानेसे प्रभुके श्रेणीसे पतन और प्रभुत्वके विनाशका प्रसङ्ग—साधुजन जो प्रमाद अवस्थामें आ गए वे श्रेणीमें नहीं,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

देखो ! पहिले प्रभु श्रेणीमें बढ़कर १३वें गुणस्थानमें पहुँचे । अरहंत भगवान सयोग केवली हुए । श्रेणीमें ८-९-१०-१२ में बढ़कर वहां शेष घातियाकर्मोंका विनाश करके वे १३वें गुणस्थानमें पहुंचते हैं । तो तुम्हारा प्रभु पहिले तो १३वें गुणस्थानमें पहुंचा और अब भोजन करनेकी खटपट लगा देनेसे प्रमाद उनमें आ गया, सो श्रेणीसे गिर गए । अब छठे गुणस्थानमें आ गए । फिर केवली क्या रहे ?

मूलतः निर्दोष प्रभुके कवलाहारकी असंगतता—१२वें गुणस्थानमें तो क्षीणमोह कहलाता है । वहां राग रंच मात्र भी नहीं रहता । क्षपक श्रेणीमें १०वें गुणस्थान के बाद १२वें में पहुंचते हैं और १३वें में अरहंत होते हैं । अब जितनी भी आयु शेष रही उतने काल तक सयोग केवली अवस्थामें रहकर फिर १४वां गुणस्थान अयोग केवलीका होगा । यहां आत्मप्रदेशपरिस्पंद रंच भी नहीं रहता । कोई पुरुष पद्मासनमें बैठ जाए । कुछ भी हिले डुले नहीं तो भी योग चलता रहता है । आत्म-प्रदेश यहीं भीतर ही भीतर हिलते डुलते चक्कर लगाते रहते हैं उसे कहते हैं योग । तो उन प्रभुके पहिले योग था, १४वे गुणस्थानमें योग नहीं रहता । विहार उपदेश आदि सब कुछ बन्द करके परम विश्राममें रह जाते हैं, यह है स्थूलतया योग निरोध । इसके बाद होता है १४वां गुणस्थान, यहां योगका अभाव है । इसमें कितनी देरको रहते हैं पांच-छः स्वस्वरोंके बोलनेके बराबर काल है । वे १४वें गुणस्थानसे मुक्त हो जाते हैं । अघातिया कर्मोंसे रहित सिद्धप्रभु बन जाते हैं । तो ऐसे वीतराग अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त शक्ति इनसे सहित ये सकल परमात्मा सिद्ध बन जाते हैं । तो ऐसे वीतराग अरहंत प्रभु जो कि बड़े बड़े योगीन्द्रोंसे आराध्य हैं उनमें क्षुधा आदिकका मानना व उसका प्रतिकार मानना यह किसी भी प्रकार संगत नहीं बैठता ।

शङ्काकारके प्रभुके भोजनके प्रयोजनमें चार विकल्प—ज्ञानस्वरूप आत्मामें उपयोगको स्थिर करके साधुजनोंने अपने अन्तरङ्गमें स्वच्छ ज्ञानप्रकाश प्रकट किया और ज्ञानमात्र मैं हूं इस प्रकारकी तीव्र भावनासे अभेद भावनासे उन्होंने बाहरी समस्त विकल्पोंका विनाश किया था । ऐसे परम ध्यानके प्रतापसे निर्ग्रन्थ साधुजनोंको कैवल्य प्राप्त हुआ । अब वहां अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तशक्ति और अनन्तआनन्दका प्रतिसमय अनुभवन चलता है । ऐसे प्रभुमें अब किसी प्रकारकी बाधा नहीं रहती । प्रभु हो गए, परमात्मा हैं, योगीन्द्रोंके आदर्श हैं, ध्येय हैं । उस परम विकासमें कोई शङ्काकार ऐसी कल्पनाएं कर डालता है कि वे प्रभु जब वर्षों, सैकड़ों वर्षों तक जीवित रहते हैं तो भोजन करते हैं । उनसे पूछा जा रहा है कि प्रभु भोजन किसलिए करते हैं । कुछ तो प्रयोजन होगा । बिना प्रयोजनके साधारण आदमी प्रवृत्ति नहीं करता । मोहीजन यदि संसारकी विडम्बना नहीं मानते, मगर किसी प्रयोजनसे ही तो उन प्रवृत्तियोंमें रहते हैं । शरीरको माना कि यह मैं हूं, इसकी तरक्की करना है । दुनिया

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

को बताना है कि यह मैं कुछ हूं। कुछ उद्देश्य तो बनाया। कोई केवल विषयोंके पोषणके लिए, मौजसे रहनेके लिए भोजन करके संतुष्ट रहने वाले लोग हैं उनका प्रयोजन यही है कि यह शरीर मैं हूं और मैं खुश हो रहा हूं इसमें मेरी उन्नति है। यों कुछ तो प्रयोजन रखते हैं, चाहे वह प्रयोजन मिथ्या आशयमें हो चाहे सम्यक आशयमें। जितने भी लोग प्रवृत्ति करते हैं उनका फिर कुछ न कुछ ख्याल अवश्य है। ज्ञानी साधुजन भी भोजन करते हैं तो उनका प्रयोजन यही है कि इस समय मेरी आत्मामें वह योग्यता नहीं है वह पूर्ण विकास नहीं है कि जिसमें यह आत्मा उत्कृष्ट हो, उन्नत कहलाये, फिर संकटमें न आये। मेरी संकटहीन अवस्था नहीं है। आत्मामें संकट छाये हुए हैं। ऐसी दशामें यदि आहार त्याग करके यहीं प्राणविसर्जन करदे तो संसारसे छुटकारा तो नहीं हो सकता। फिर किसी भवमें जन्म मरण करना होगा उससे हमारा लाभ नहीं है। किसी तरह इस शरीरकी रक्षा कुछ समय बनाये रहें जब तब कि मैं आत्मा अपने आत्मापर पूर्ण विजय प्राप्त नहीं करता उन विकल्पोंको तजकर निर्विकल्प समाधिमें नहीं आ पाता तब तक तो शरीर रखना ही होगा, उसके लिए भोजन करते हैं। शरीर रख रहे निर्विकल्प समाधि प्राप्त करनेका प्रयत्न रखनेके लिए। प्रयोजन तो कुछ है। प्रभुका क्या प्रयोजन है, क्यों वे भोजन करते हैं। इस सम्बन्धमें चार विकल्प रखे। क्या शरीरकी वृद्धिके लिए, पुष्टिके लिए प्रभु भोजन करते हैं अथवा ज्ञानध्यान संयमसिद्धिके लिए प्रभु भोजन करते हैं? अथवा क्षुधाकी वेदनाका प्रतिकार करनेके लिए प्रभु भोजन करते हैं या प्राणोंकी रक्षा करनेके लिए भोजन करते है? जितने लोग भोजन करने वाले हैं सबके इन चारोंमेंसे कोई न कोई उद्देश्य है। तो इन चार विकल्पोंमेंसे कौनसा विकल्प स्वीकार करते हो?

शरीरपुष्टिके लिए प्रभुके भोजन माननेकी असंगतता—प्रभु शरीरकी पुष्टिके लिए भोजन करते हैं यह बात तो असिद्ध है। जब भगवानके ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अन्तराय ये चारघातिया कर्म नष्ट हो गये तो अन्तरायमें लाभांतरायकर्म भी है, उसका भी विनाश हो गया। तो कर्मोंके विनाश होनेसे प्रतिसमय विशिष्ट परमाणुओंका लाभ होता ही रहता है। पवित्र शरीरवर्गणाके परमाणु आते ही रहते हैं और उन वर्गणाओंके लाभसे शरीरकी पुष्टि सिद्ध है। कितने ही लोग तो अधिक खानेसे ही दुबले रहा करते हैं। तो खानेके साथ इस शरीरकी पुष्टिका अविनाभाव नहीं किन्तु शरीरवर्गणाओंका शरीरमें आनेके साथ शरीरकी पुष्टिका सम्बन्ध माना जा सकता है। जो लोग आहार करते वहां भी क्या उनके शरीरवर्गणाओंका आवागमन नहीं है। तो प्रभुके लाभान्तरायका क्षय होनेसे कोई विशिष्ट वर्गणाओंको शरीरमें प्रवेश होता है उससे उनका शरीर पुष्ट है। दूसरी बात यह है कि शरीरकी पुष्टिके लिए प्रभु भोजन ग्रहण करें तो फिर उन्हें निष्परिग्रह निरीह कैसे कहा जा सकता है? जैसे यहांके अज्ञानी मोहीजन अपने शरीरकी पुष्टिके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

लिए ही भोजन करते हैं तो वे निर्ग्रन्थ तो नही कहलाते। यह तो बड़ी विडम्बना है कि शरीरका ध्यान रखकर अपने आत्मामें कुछ विकल्प मचाये, कुछ कल्पनारूप प्रवृत्ति करे।

शरीररागकी असारता—भैया ! शरीर किसका है ? शरीरकी पुष्टि कर लेनेमें आत्माको क्या पुष्टि मिलती है ? आत्माकी पुष्टि तो शान्तिलाभसे है। जितना यह शान्त स्थितिमें रहेगा उतना ही समझिये आत्मा पुष्ट है। शरीरके पुष्ट होनेसे आत्माकी पुष्टि नहीं है। और फिर जीव देहके बन्धनमें पड़ा है, क्लेशोंका तांता, दूसरोंका राग लग रहा है, शरीरको हिफाजत भी रखनी पड़ती है, सभी विडम्बना हैं। वस्तुत: पूछो तो शरीर ही तो हमारे सब दु:खोंकी जड़ है। यह दृष्टि जो खिची-खिची फिर रही है बाह्य पदार्थोंमें, किसी ममत्व में लग रहे हैं, किसी ममत्वमें लग रहे हैं, आशक्त हो रहे हैं, कल्पनायें उठा करती हैं। यदि यह शरीर न होता, केवल यह मैं आत्मा ही आत्मा होता तो कैसी पवित्र स्थितिमें होता, फिर ये मोहके रागके बन्धन कहाँ ठहरते। लोग चाहते हैं कि रागसे उत्पन्न हुए क्लेशको हम राग करके दूर करेंगे। मगर जैसे कपड़ेमें लगे हुए खूनके दागको खूनसे ही धोनेपर वह साफ नहीं होता है इसी तरह रागसे मोहसे ही तो दु:ख उत्पन्न होता है और रागसे ही हम उस दु:खको मिटाना चाहें, तो यह मिटानेकी युक्ति नहीं है। करते क्या हैं लोग सिवाय इसके। राग हो परिवारपर, मित्रपर, इज्जतपर, शरीरपर तो क्या होता है ? रागने वेदना उत्पन्न होती है, भीतरमें आकुलता होती है, अशान्ति होती है, उस अशान्तिको न सह सकनेसे काम क्या किया। बस प्रेम करने लगे, रागभरी बातें बोलने लगे, राग बढ़ाने लगे। यह जाननेकी, समझनेकी कोशिश करते हैं कि हमारा तुमपर अधिक राग है, तुम्हारा भी हमपर पूर्ण राग है या नहीं, ऐसी बुद्धि द्वारा, प्रवृत्ति द्वारा जाननेकी कोशिश करते हैं और ये मोही जीव कुछ समझ जाय कि हां जितना हम चाहते हैं उतना ही ये चाहते हैं तो ये अपनेमें कुछ मौज सा मानने लगते हैं। पर वहाँ क्या मिला ? सिवाय एक अशान्तिके और बन्धन बढ़ानेके, अशान्ति बढ़ानेके। अभी तक कम रागमें थे, दूर थे, खबर न थी, परिचय न था, बोलचाल व्यवहार न था। जहाँ रागकी बात चली, बन्धन चला, व्यवहार बना अब उतना बन्धन बन गया कि अशांति बढ़ गई। तो रागसे उत्पन्न हुई वेदनाको शांत करनेका उपाय राग करना कभी नहीं हो सकता।

राग आगकी जलन बुझनेका उपाय ज्ञानवर्षण—राग आगमें जल रहे प्राणियोंको इस जलनसे बचा सकनेमें समर्थ है। वर्षा यों कह रहे कि यह ज्ञान चूंकि अपनी भूमिसे दूर पहुंच गया, अब दूरसे अपनी भूमिकी तरफ ज्ञानको लाना है तो जैसे समुद्रका ही जल जब सूर्यके आतापके कारण समुद्रसे उठकर दूर चला जाता है और उसका रूप बदलकर बादल बन जाता है, अब वह ही जल था समुद्रका ही जल, पर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जब इतने ऊंचेसे बादलोंसे बरषकर समुद्रमें आता है तो इसे बरषना कहते हैं। यों ही समझिये कि हमारे इस ज्ञान समुद्रसे यह ज्ञान जल रागकी गर्मीसे ज्ञानमय भाप सा बनकर याने कल्पनाओंका रूप रखकर कल्पनाओंके रूपसे चलकर बहुत दूर चला गया है। यह ज्ञानजल जो मेरा ही अंग है वह अपना रूप बिगाड़कर कल्पनाओंका बादल बनकर दूर चला गया है, अब यह मेरे निकट आता है तो इस आनेको हम बरषना कह सकते हैं क्योंकि जैसे बादल जब बरषते हैं और समुद्रमें मिलते हैं तो वह बादल अपने बादलपनेका रूप छोड़कर पानी जैसी भाप बनकर ही तो समुद्रमें मिल सकता है इसी प्रकार हमारा यह ज्ञानजल जो कि यथार्थ रूप बिगाड़कर कल्पनाओंका रूप रखकर मुझसे दूर निकल गया, वह ज्ञान मेरे पास आयगा तो उन कल्पनाओंका रूप तोड़कर, खतम करके एक विशुद्ध जाननमात्र अपना स्वरूप जैसा रूप रखकर यह मेरे पास आता है तब तो मेरेसे मिल सकता है अन्यथा कल्पनाके रूपमें यह ज्ञान उड़ा उड़ा फिर रहा है। तो रागकी वेदनासे उत्पन्न हुई क्लेशकी जलनको बुझानेमें समर्थ एक ज्ञानवर्षा ही है। अन्य कोई उपाय नहीं है। रह रहकर इस २४ घंटेमें दो एक बार कभी तो अपने आपकी इस मूलकी पुष्टि तो करना चाहिए। मैं आत्मा ज्ञानरूप हूं। उस ज्ञान द्वारा मैं अपने ज्ञानस्वरूपकी ओर आऊं तो इस आत्मामें एक बल बढ़ता है।

ज्ञानके सम्पर्कमें सर्व ओरसे समृद्धिलाभ—भैया! चाहिये क्या सिवाय आनन्दके और क्या वाञ्छा है? सभी लोग यही चाहते हैं कि मेरेको उत्कृष्ट आनन्द प्राप्त हो। आनन्दके सिवाय और कुछ वाञ्छा तो नहीं। तो उसका यह उपाय है कि मैं अपने आत्माके ज्ञानस्वरूपको समझूं और कुछ समय तो इसके निकट रह लूं। ऐसा जो उपाय है वह इतना अच्छा उपाय है कि जिसमें समस्त समृद्धियां भरी हुई हैं। ऐसा ज्ञान करने वाले आत्माके विवेकपूर्ण शुभरागसे पुण्य इतना बढ़ता है कि अन्य भावोंसे पुण्य उतना नहीं बढ़ सकता। ज्ञानी पुरुषकी भक्तिदान आदिक प्रवृत्तिमें पुण्यरस इतना बढ़ता है कि अज्ञानी पुरुष कभी भी नहीं बढ़ा सकते हैं। चक्रवर्तीपना जैसे वैभवका प्राप्त करनेका पुण्य प्राप्त करना इन अज्ञानी मोही पुरुषोंका काम नहीं है। जो ज्ञानी पुरुष हैं, जिन्हें संयम तपश्चरणसे प्रेम रहा है ऐसे पुरुषोंने ही ऐसा पुण्यरस प्राप्त कि चक्रवर्ती हुए। वही चक्रवर्ती अगर अपने ज्ञानको बिगाड़ ले, मिथ्यात्व दशामें आ जाय यो भले ही फिर निम्नदशामें आ जाय पर उत्कृष्ट पुण्यरस जो भी प्राप्त होता है वह मोहके कारण नहीं प्राप्त होता। उसका पूर्वभवका एक श्रेष्ठ आदर्श जीवन था। तीर्थङ्कर प्रकृतिका जो बन्ध होता है उसके करनेमें समर्थ क्या ये मोहीजन हैं? अरे ज्ञानी पुरुष ही अपने आपमें अपने ज्ञानस्वरूपका आदर रखकर जो एक आन्तरिक सुख प्राप्त कर रहा है उससे यहां भी तुरन्त आनन्द मिल रहा है और परलोकमें भी उसकी बुद्धि निर्मल रहेगी। वहां भी धर्मसाधना करके वह अपनेको संसारके समस्त संकटोंसे दूर कर लेता है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सर्वविशुद्ध प्रभुके भोजन और शरीरोपचयका प्रयोजन दोनोंकी असंभवता—अपने आपकी बात समझनेमें, अपने निकट रहनेमें इस ज्ञानस्वरूपका अनुभव करनेमें आनन्द ही आनन्द है। जैसे कहते हैं कि मिश्री सब तरफसे मीठी होती है, इसी तरह इस आत्माका स्मरण करना, इसकी चर्चा करना, इसके निकट बसना, इन कार्योंमें भी स्वाद सर्वतः मधुर ही मधुर है। बाकी जो आकुलता, चिंता, तृष्णा, क्षोभ आदिक मचे हुए हैं वे सब तो एक कष्टमयी चीजें हैं। आत्माका स्पर्श करना यह एक मङ्गलरूप, आनन्दरूप कार्य है, यह वैभव इस जीवने अब तक न प्राप्त किया। बस यही इस जीवपर गरीबी लगी हुई है। अन्य बाहरी बातें तो वे सब भिन्न ही हैं। उनसे अपना क्या बड़प्पन मानना ? अधिक धन आ गया तो क्या, लोक में अपना चला चल गया तो क्या, साम्राज्य हो गया तो क्या, ये तो सब मोहजालसे सम्बन्धित बातें हैं। इनसे आत्माकी अमीरी नहीं, किंतु अपने आपका सहज ज्ञान-स्वरूप क्या है इसका अनुभव आये तो एक ऐसी अमीरी है कि जिसके प्रतापसे संसारके समस्त संकट सदाके लिए टल सकते हैं। आत्माका विशुद्ध वैभव पूर्णरूपसे जिसने प्राप्त कर लिया है ऐसे सकल परमात्मा प्रभु अरहंत देवके सम्बन्धमें यह कहना कि शरीरकी पुष्टिके लिए वे भोजन करते हैं, तो यह बात युक्त नहीं है। यदि मोही जीवोंकी तरहसे वे प्रभु भी शरीरकी पुष्टिके लिए भोजन करने लगें तो फिर उनमें प्रभुता क्या रही। वे तो साधारण पुरुषोंकी तरह दीन हो गए।

ज्ञानध्यानसंयमसिद्धिके लिये प्रभुभोजन माननेकी मूढ़ता—प्रभुके तो अब केवलज्ञान हो गया जिसके द्वारा समस्त पदार्थोंके स्वरूपका प्रतिसमय स्पष्ट साक्षात्कार करते हैं। यदि प्राप्त न होता ज्ञान तो कहा जा सकता कि ज्ञानलाभके लिये वे कुछ काम करते हैं। जहां परिपूर्ण ज्ञान लाभ है जिसके आगे और कुछ चाहिये ही नहीं, ऐसा असीम अनन्त ज्ञान जिनके प्रकट हुआ है उनके विषयमें कहना कि वे ज्ञान सिद्धिके लिए भोजन करते हैं तो यह अपवादकी बात है। उनके ज्ञान उत्पन्न हुआ है और विशुद्ध हो जानेके कारण यह ज्ञान अक्षयस्वरूप है, त्रिकालमें कभी नष्ट नहीं हो सकता। तब फिर ज्ञान शुद्धिके लिये भोजन प्रवृत्ति कहना तो प्रभुके लिये अयुक्त है। ध्यानकी बात कहो तो प्रभुमें तो ध्यान परमार्थसे है ही नहीं, क्योंकि ध्यान कहते हैं चित्तके निरोध को। एक तत्त्वमें किसी पदार्थमें किसी विषयमें अपने मनको लगा देनेका नाम ध्यान है। मन प्रभुमें रहा नहीं भावमन प्रभुमें है ही नहीं जिससे कल्पना करें और किसी विषयमें उपयोगको स्थिर करें, ध्यान करें। ध्यान वहाँ सम्भव ही नहीं। करणानुयोगमें जो ध्यान बताये गये हैं—सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाती और व्युपरत क्रियानिवृत्ति, सो उपचारसे कहे गए हैं अर्थात् ध्यानका काम है कर्मक्षय वैसे हो उनके हो रहा है तो उन परमात्माके कर्मक्षय निरखकर एक ध्यानका उपचार कर दिया गया है। तो ध्यान प्रभुमें वस्तुतः होता ही नहीं है। ध्यान तो परम पहिले ही हो चुका। उस ध्यानके प्रतापसे ही वे परमात्मा हुए। अब परमात्मामें यदि कुछ ध्यान

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

करना बाकी रहा तो समझो कि वे अधूरे हैं। तो प्रभुमें ध्यानकी बात कहना भी युक्त नहीं। संयमकी सिद्धिके लिए भी आहारकी बात लेना युक्त नहीं क्योंकि संयम है यथाख्यात। वह तो सदा रहता है। यथाख्यातका अर्थ है जैसा आत्माका स्वरूप है वैसा प्रकट हो गया है, जहां किसी भी प्रकारका विकार नहीं है, आत्माका जो विशुद्ध स्वरूप है वह प्रकट हो गया है। वह यथाख्यात संयम प्रभुके सदा ही रहता है। अब इसके आगे किस संयमकी सिद्धि करना? इससे यह बात कहना भी ठीक नहीं है कि प्रभु ज्ञानध्यानसंयमकी सिद्धिके लिए आहार करते हैं।

क्षुधावेदनाप्रतीकारके लिये प्रभुभोजन माननेकी अज्ञानता—तीसरा विकल्प भी ठीक नहीं कि प्रभु भूखकी वेदनाका प्रतिकार करनेके लिए भोजन करते हैं अनन्त सुख अनन्त शक्ति सम्पन्न भगवानको क्षुधाकी वेदना सम्भव ही नहीं है। अपने स्वभावको लेकर थोड़ा प्रभुके स्वरूपका निर्णय तो बनावें। प्रभु क्या है? एक ज्ञान-पिण्ड जाननमात्र आत्मा तो अमूर्त है ही, उसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श नहीं है पर यह संसार अवस्थामें आत्माका जो यह अमूर्त रूप मूर्त शरीरमें जकड़ा है, एक दूसरेसे व्यवहार करता है, चाहे किसी रूपमें सही, ऐसा जो मूर्तिक ढङ्ग बन गया है यह स्वयं के स्वरूपकी सम्हाल न करनेके कारण बन गया है। यही तो विडम्बना है जिसको देखकर मोही लोग खुश होते हैं। यह मैं हूं, यह मेरा है, यह तो सारी विडम्बना है। इनसे रहित आत्माकी जो एक विशुद्ध अवस्था है वह अपने अमूर्त ज्ञानस्वरूपमें रहने की अवस्था है, बात तो असलमें वह है आत्माकी। जहां ज्ञान प्रकाशमात्र रह गया, परिपूर्ण रह गया, ऐसा ज्ञानपुञ्ज जो कि अनन्त आनन्दका अविनाशी है ऐसे अनन्त शक्तिसम्पन्न प्रभुमें किसी प्रकारकी वेदना बताना यह तो अत्यन्त अयुक्त बात है। इसलिये यह तीसरा विकल्प भी ठीक नहीं कि प्रभु क्षुधावेदनाके लिए भोजन करते हैं।

प्राणरक्षार्थ प्रभुभोजन माननेकी असङ्गतता—अब चौथा विकल्प क्या सम्भव हो सकता है? क्या प्रभु प्राणोंकी रक्षाके लिए भोजन करता है? क्या यह बात जच सकती है? अरे! प्रभु तो चरमशरीरी हैं। चरमशरीरी जितने भी हैं वे सब अपमृत्युसे रहित होते हैं और केवलज्ञान होनेपर क्या यह सम्भव है कि उनकी आयु बीचमें कभी भी खतम हो सकती है? वे प्रभु अपमृत्युसे रहित हैं, वे अब सर्व प्रकार अमर हो गए हैं। अमर उसे कहते हैं जिसका मरण न हो। मरण तो किसी भी आत्माका नहीं है पर इस संसार अवस्थामें यह जीव अपने मरणकी कल्पना करता है पर आत्माका विनाश नहीं होता। प्राणरक्षार्थ प्रभुका भोजन बतानेकी बात तो यहां दीनताकी है। दूसरी बात इस जीवके साथ आयुकर्मका सम्बन्ध लगा है। जब समस्त घातियाकर्मोंको दूर करके वे प्रभु अनन्त चतुष्टय सम्पन्न होते हैं तो फिर अप-मृत्युकी बात उनमें सम्भव नहीं रहती। ऐसे भोगभूमियां देव आदि अनेक जीव हैं जिनके अपमृत्यु नहीं होती। प्रभु तो अनन्त चतुष्टय सम्पन्न हैं, इनकी बीचमें मृत्यु

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हो जाय यह बात सम्भव नही। सो यह भी कहना ठीक नहीं कि प्राणोंकी रक्षाके लिए प्रभु भोजन किया करते हैं।

अनन्त गुणवीर्यसम्पन्न प्रभुमें कवलाहारकी असंभवता – किसी प्रकार प्रभुमें कोई अवगुण लाना यह उनमें सम्भव नही है। प्रभु तो सर्वतः समस्त गुण सम्पन्न हैं, उनमें एक भी अवगुण नही है। भक्तामर स्तोत्रमें कहते हैं कि—"को विस्मयोऽत्र यदि नामगुणैरशेषैस्त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश। दोषैरुपात्तविविधाश्रयजातगर्वैः स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि।" हे प्रभो ! आपका आश्रय समस्त गुणोंने ले लिया है। समस्त गुण आपकी शरणमें आगये हैं। आप समस्त गुणोंसे भरपूर हो गए हैं। इसमें कोई आश्चर्यकी बात नही है। क्यों आश्चर्य नही ? हे प्रभो, इन गुणोंने बहुत कोशिश की कि हम कही रहें आयें। इन गुणोंने बहुत निवेदन किया इन संसारी जीवोंसे कि हमें ठहरनेके लिए स्थान दो, पर किसी भी संसारी जीवने इन गुणोंको ठहरनेके लिए स्थान नही दिया। अरे भगो, भगो ! ऐसा कहकर सभी संसारी जीवोंने उन समस्त गुणोंको भगा दिया। तो वे बेचारे सारेके सारे गुण झकमारकर आपमें आ गये तो इसमें कौनसा आश्चर्य है ? इसका प्रमाण ? देखिये ! जब दोषोंने इन संसारी जीवोंके पास जाकर निवेदन किया कि हमें ठहरनेके लिए स्थान दो ! तो सभी संसारी जीवोंने आदरसे बुलाया और कहा—आवो, आवो ! तुम्हारे ठहरनेके लिए यहां खूब जगह है। तो सारेके सारे दोष इन संसारी जीवोंके पास आ गए। देखो ना, हे प्रभो ! आपके पास कोई भी दोष न आ सका। तो सारेके सारे गुण प्रभुके पास आ गए और सारे दोष इन संसारी जीवोंके पास आ गये। इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं। प्रभुके इन गुणोंका वर्णन करनेमें मूलमें यह भी बात हो सकती है कि यह जताना कि प्रभु संसारमें उच्च गुणवान तो आप ही हैं संसारी जीव तो दोषोंसे भरे हुए हैं, गुण तो समस्त आपके पास आ चुके हैं। तो ऐसे उत्कृष्ट गुण सम्पन्न प्रभुमें किसी भी प्रकारकी वेदनाकी बात जोड़ना यह सङ्गत बात नही है। प्रभु १८ दोषोंसे रहित हैं—क्षुधा, तृषा, ठण्ड, गर्मी, जन्म, जरा, मरण, विषाद, शोक आदिक जितने भी दोष हैं वे एक भी दोष अब प्रभुमें नही रहे। ऐसे निर्दोष प्रभुके ज्ञानस्वरूपपर दृष्टि देकर यदि हम भक्ति स्तुति ध्यान आदिक करें तो खुदमें भी एक प्रभाव बढ़ता है जिससे कि स्वयंकी उन्नति है। प्रभुका स्वरूप बिगाड़ कर फिर प्रभुकी भक्ति करनेमें कोई सिद्धि नहीं है।

वेदनीय सद्भावमात्रसे प्रभुमें परीषहका उपचार कथन—शङ्काकार कहता है कि यदि सकल परमात्मा प्रभु भोजन नही करते है तो फिर आगममें यह क्यों कहा कि—'एकादशजिनेपरीषयः'। जिनेन्द्र भगवानमें ११ परीषह होते हैं फिर तो इस आगमसे विरोध आ जायगा। समाधानमें कहते हैं कि 'एकादशजिने' इस सूत्र का विरोध नही है। कारण यह है कि उन परीषहोंका जिनेन्द्र भगवानमें उपचारसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रतिपादन किया गया है। वस्तुत: प्रभुमें परीषह नहीं हैं, किन्तु वेदनीय कर्मका अभी सद्भाव है इस कारण उपचारसे परीषह बताया गया है। उपचारका कारण वेदनीय का सद्भावमात्र है अन्य और कुछ नहीं। परमार्थदृष्टिसे निरखा जाय तो प्रभुमें परीषहोंका सद्भाव होनेपर भी क्षुधा आदिक परीषहोंके सद्भावसे यदि भूख मान ली जाय तो रोग बंध, तृष्णास्पर्श परिग्रह भी हो जाने चाहिए, तब तो प्रभुके महान दुःख हो गया जैसे वेदनीयके रहने मात्रसे प्रभुमें भूख मान बैठते हो ऐसे ही फिर रोग मान बैठो क्योंकि रोग भी असाता वेदनीयसे होता है फिर तो प्रभुको बुखार भी आने लगे डाक्टरकी भी जरूरत पड़े, उन प्रभुको पलङ्गपर भी लिटाना पड़े। ये सब ऐब आ जायेंगे। फिर तो उन्हें कोई पीट भा दे, उनका बध भी कर दे तब तो फिर वे प्रभु महान दु:खी हो गए और जब वे प्रभु इतने अधिक दु खी हो गए तो फिर उनमें प्रभुता ही क्या रही? जैसे यहांके संसारी लोग भूख प्यास, रोग, शोक, छेदन, भेदन आदिके दु:ख पाते हैं वैसे ही दु:ख प्रभुके लग गए? तो फिर उनमें प्रभुता ही कहां रही?

रसनासे भोजन परिज्ञान करनेपर मतिज्ञानका व अन्य बाधाओंका प्रसङ्ग—अब और भी विचार करो। भोजन करनेका ढंग तो सबका एकसा ही होता है। हाथसे कौर उठाकर मुखमें डालकर ही तो सभी लोग भोजन किया करते हैं खट्टा मीठा, चरपरा आदिक स्वादोंका अनुभवन किया करते हैं, तो ऐसा ही भोजन करनेका ढङ्ग उन प्रभुका भी होगा वे भी सब प्रकारके स्वादोंका अनुभवन किया करते होंगे। तब तो भगवानके मतिज्ञान आ गया अर्थात् इन्द्रियज ज्ञान बन गया। तो तुम ही बतावो कि प्रभु जो भोजनमें गुणआदिकका ज्ञान करते हैं या जो भी उनका उपयोग होता है वह क्या रसना इन्द्रियके द्वारा हो तब तो भगवानमें मतिज्ञानका प्रसङ्ग आ गया। यदि कहो कि केवल ज्ञानके द्वारा प्रभु भोजनका अनुभव करते हैं तब तो सारा भोजन जो दूसरे लोगोंने भी खाया उसका भी उन्हें अनुभवन हो जाना चाहिए, क्योंकि केवलज्ञानके द्वारा प्रभु भोजनका अनुभव करते हैं और केवलज्ञानसे ही अपना खाया जाना जा रहा ऐसे ही सबका खाया भी जान रहे। यह नहीं कहा जा सकता कि भगवान अपने शरीरमें ठहरे हुए भोजनका ही अनुभव करते हैं, दूसरेके शरीरमें ठहरे हुए भोजनका अनुभव नहीं करते, क्योंकि भगवान तो निर्मोह है, उनमें यह मेरा शरीर है यह दूसरेका शरीर है ऐसी बुद्धिका विभाग नहीं है। उनके लिए सब पदार्थ हैं तो वे ज्ञेयमात्र हैं, उनमें यह विभाग नहीं किया जा सकता कि यह मेरा शरीर है और यह दूसरेका शरीर है, यह मेरा खाया भोजन है ऐसा अनुभव वे प्रभु नहीं किया करते यदि ऐसा अनुभव करें तो वे रागी द्वेषी कहलावेंगे। सो यदि केवल ज्ञानसे अनुभव करते हैं तो केवलज्ञानसे तो सारा भोजन जाना जा रहा है, खुदका भी खाया और परका भी खाया। सभी भोजनोंका अनुभव होना चाहिये। इससे क्षुधापरीषह और उसका प्रतिकार मानना प्रभुमें युक्त नहीं है। तो एकादशजिने परीषह, यह सूत्र कहकर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जो भगवानमें परीषह बताये गये वे उपचारसे बताये गए हैं।

"एकादश जिने" सूत्रमें परीषहोंके अभावकी ध्वनि—एकादश जिने ऐसा सूत्र है उसका अर्थ यदि यह करते हो कि प्रभुमें ११ परीषह हैं तो उसका भाव यह लेना होगा कि वे ११ परीषह उपचारसे हैं, वास्तवमें प्रभुमें ११ परीषह नहीं हैं। और यदि उसका यह अर्थ करते हो कि एक: न दश इति एकादश, १ भी नहीं, १० भी नहीं, अर्थात् कोई भी परीषह प्रभुमें नहीं तो इससे यह स्पष्ट होगा कि उपचारसे भी प्रभुमें परीषह नहीं माने जाते। इस सम्बन्धमें स्पष्ट प्रयोग है कि भगवान क्षुधा आदिक परीषहोंसे रहित है क्योंकि अनन्त सुखी होनेसे। जो अनन्त आनन्दमय हैं वह परीषहोंसे युक्त नहीं होता। जैसे सिद्ध भगवान अनन्त आनन्दसे सम्पन्न हैं, क्या उनके क्षुधादिक परीषह है? तो श्वेताम्बर लोग भी यों नहीं मानते कि सिद्धमें ११ परीषह है। जैसे सिद्ध प्रभुमें कोई परीषह नहीं इसी प्रकार सकल परमात्मा भी अनन्त आनन्दमय हैं इसलिए उनमें कोई परीषह नही है।

भोजन करते हुए प्रभुके अदृश्य होनेके कारणके तीन विकल्प—अब कुछ दो एक आखिरी बातें भी सुनो। प्रभुके कवलाहारके शङ्का समाधानमें बहुत सा समय गुजर गया, आखिर अब विराम लेना चाहिये और कुछ आगेकी प्रयोजनभूत बात सुनना चाहिए। मोक्ष क्या है? मोक्षका स्वरूप क्या है, इस प्रकरणको आगे बहुत विस्तारसे कहा जायगा। सो इस प्रकरणको अब समाप्त करना ही चाहिए। बहुत हो गया। प्रभुमें कवलाहार माननेकी कोई गुंजाइश ही नहीं रही। आखिरी कुछ बातोंमें एक बात यह पूछनी है शङ्काकारसे कि भगवान भोजन करते हुए लोगों को दिखते हैं या नहीं? क्या लोगोंको ऐसा दिखता है कि यह देखो प्रभु बैठे हुए भोजन कर रहे हैं। इस तरहसे हाथ उठा रहे हैं, इस तरहसे कौर तोड़-तोड़कर खा रहे हैं? यदि प्रभु इस तरह दिखें तो उनमें हीनता नजर आवेगी। तो इस बातको शङ्काकार भी नहीं मानता क्योंकि इसमें तो एक बहुत बड़ी विडम्बना और तुच्छता जैसी बात लोगोंको प्रतीत होने लगेगी। क्या है, जैसे यहांके मनुष्य लोग भोजन किया करते हैं तो उनमें कोई प्रभुताकी श्रद्धा तो नहीं होती? दिखनेपर श्रद्धामें कमी आ जायगी। तो यहां मानते हैं शङ्काकार लोग कि भगवान भोजन कर रहे हैं, पर मनुष्योंको आंखोंसे नहीं दिखते हैं। तो यह बतलावो कि भगवान जो नहीं दिखा करते हैं भोजन करते समय सो क्यों नहीं दीखा करते हैं? क्या वे कोई अयोग्य काम कर रहे इसलिए एकान्तका आश्रय कर मानो छिपकर वे खा रहे हैं, सो लोगोंको नहीं दिख रहे हैं? या गहन अन्धकारमें स्थित होकर भोजन करते सो नही दिखते या विद्या विशेषसे अपनेको उस समय तिरोहित कर देते इस कारण नही दिखते।

भोक्ता प्रभुके अदृश्य होनेके प्रथम दो कारणोंपर विचार—यदि एकांत

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

में आकर इस तरहसे छिप करके प्रभु भोजन करते हैं तो इसमें तो बहुत बड़ी हीनता की बात आ जायगी। जैसे कोई परस्त्रीलम्पटी पुरुष कोई अनुचित काम करता है, पाप करता है तो वह लोगोंसे छिप करके करता है क्योंकि वह अयोग्य काम है। इसी तरह एकांतमें खाने वाली भी बात हो गई। यदि प्रभु छिपकर भोजन करते हैं तो इसमें तो एक बहुत बड़े दोषकी बात है। वे भी जानते हैं कि यह खानेकी बात दोषीक है इसलिए वे छिपकर भोजन करते हैं तो सारा परिणाम ही दूषित हो गया, प्रभुता क्या रही वहाँ तो दीनता आ गई। यदि कहो कि जिस समय प्रभु भोजन करते हैं उस समय अंधेरा छा जाता है। सो उस समय भोजन करते हुए वे दिखा नहीं करते अथवा जब या जहां गहन अन्धकार होता है वहाँ स्थित होकर भोजन करते यह कहना अयुक्त है. क्योंकि वहां अन्धेरेकी तो सम्भावना है ही नहीं। प्रभुका शरीर ही ऐसा प्रकाशमय है कि उसकी दीप्तिसे ही अन्धकार दूर हो जाता है। प्रभु जहाँ बैठे वहां सर्वत्र प्रकाश बना रहता है। उनका देह स्वयं प्रकाशमय है, अन्धकारकी भी सम्भावना नहीं है जिससे माना जाय कि प्रभु अन्धेरेमें खा रहे हैं इसलिए लोगोंको नहीं दिखते। तो यह विकल्प नहीं उठाया जा सकता कि भगवान इसलिए नहीं दिखते हैं आँखोंसे कि वहां अंधकार छाया रहता है।

विद्याविशेषके उपयोगसे भोक्ता प्रभुके अदृश्य होनेका विकल्प—अब शङ्काकार कहता है कि भगवान आंखोंसे इस कारण नहीं दिखते कि भगवानमें ऐसी विद्या विशेष है कि जिस समय वे भोजन करते हैं उस समय वे ऐसी विद्याका उपयोग करते हैं कि वे भोजन करते हुए लोगोंको न दिखे। यहां भी जादूगर लोग ऐसे होते हैं जो ऐसा आंखोंको धोखा दे देते हैं कि कुछसे कुछ दिखने लगता है। अगर बहुत से लोग खड़े हैं घड़ी बाँधे हुए और समय तो हो करीब ४ बजे दिनका, पर जादूगर कहदे कि देखो इस समय घड़ीमें ठीक १२ बज रहे हैं तो देखने वाले उन सभी लोगों को अपनी अपनी घड़ीमें १२ बजनेका ही समय दिखता है। अब तथ्य उसमें क्या है, बात क्या है इसपर हम कुछ नही कह रहे हैं लेकिन ये जादूगर लोग ऐसी ही अनेक बातें दिखा देते हैं कि लोगोंको कुछसे कुछ दिखने लगता है। कहो एक रुपएका दो रुपया बना दे। एक जादूगर था। तो उसने बहुतसे खेल दिखाये पर एक खेल ऐसा दिखाया कि जब वह अपना डिब्बा लेकर चला किसी मनुष्यकी टोपी उठाकर हिलाई तो उस टोपीसे कुछ कनखना करके रुपए गिरे, यों ही जिसकी भी कमीज, धोती, कुर्ता आदि पकड़कर हिलाया, वहीसे खनखनकी आवाज आई, बादमें वह सभी लोगोंसे एक एक दो दो पैसा मांगने लगा। तो वहां था क्या ? केवल आंखोंका धोखामात्र था। तो ये तांत्रिक लोग भी कुछसे कुछ बात करके दिखा देते हैं। तो इसी प्रकारसे ये प्रभु भी अपनी विद्याविशेषसे ऐसा दृश्य उपस्थित कर देते हैं कि प्रभु भोजन करते जाते हैं पर लोगोंको दिखते नही हैं ऐसा शङ्काकार कह रहा है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विद्याविशेषके उपयोगसे भोक्ता प्रभुके अदृश्य होनेके विकल्पका निराकरण—अब उक्त आशङ्काका उत्तर देते हैं कि यदि वह अपनेको ओझल करने के लिए विद्याविशेषका उपयोग करते हैं तो फिर उनमें निर्ग्रंथता कहाँ रही ? बड़े ऊँचे महर्षिजनोंमें अनेक ऋद्धियां उत्पन्न हो जाती हैं और उन्हें पता भी नहीं रहता कि मेरेको कोई ऋद्धि उत्पन्न हुई है। जिस समय मुनि अकम्पनाचार्यके संघपर हस्तिनापुरमें विपत्ति आयी थी कि मुनिहत्याप्रयासमें कोलित बलि आदिक ४ मन्त्री देशनिकाला पाकर यहां वहां डोलकर जब हस्तिनापुरके राजा पद्मके यहां मन्त्री बन कर रहने लगे थे उस समय एक सिंहपल नामक विरुद्ध राजाको छल कपटसे बलिने अपने वशमें कर लिया, उस समय राजाने उस बलि मन्त्रीपर प्रसन्न होकर यह वचन दिया था कि तुम्हें जो माँगना हो मांगलो। उस समय बलिने यह कह दिया था कि हमारे वचनको भण्डारमें रख लो समय पाकर मांग लेंगे। जब अकम्पनाचार्य आदिक ७०० मुनियोंका संघ हस्तिनापुर आया उस समय बलिने अपनी कषायको पूरा करने का मौका समझा। बलिने ७ दिनका राज्य उस राजासे माँगा। अब तो वे बलि आदिक चारों मंत्री पूर्ण स्वतन्त्र हो गए। मुनिसंघको चारों ओरसे कांटोंसे बेड़ दिया, उसके भीतर और भी कूड़ा करकट आदिक गंदी चीजें भरदीं और उसमें आग लगा दी। उस समय उन मुनियोंके कण्ठ रुद्ध हो गए थे पर वे सब संसार, शरीर, भोगोंको अनित्य जानकर जीवनकी इच्छा न रखकर ध्यानस्थ होगए। उस समय श्रवण नक्षत्र कांप रहा था। सावन सुदी पूर्णिमाका वृत्तान्त है, चतुर्थकालकी यह घटना है उस कम्पित श्रवण नक्षत्रको देखकर अन्य देशकी पहाड़ीपर स्थित एक मुनिराजने रात्रिके समय 'हाय' शब्द बोला। साधुजन रात्रिको मौन रहते हैं, मगर यह एक भयानक उपद्रवका समय था तो हाय शब्द बोल आया, यद्यपि साधुजन जरा भी अपने नियम संयमसे किसी भी परिस्थितिसे थोड़ा भी डिगते हैं तो उसका भी वे प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध होते हैं, तो भी परिस्थितियां ऐसी आती हैं कि जहां धर्मका अधिक सम्बन्ध है, तीर्थरक्षाका तो बोल आना ऐसा हो जाता है, तो उस समय उनके निकट पुष्पदन्त क्षुल्लक थे उन्होंने पूछा महाराज ! क्या विपत्ति है ? तो बताया कि एक संघपर ऐसी आपत्ति आ रही है और उसके निवारणका एक उपाय भी है। तो पुष्पदन्त महाराज बोले—वह कौनसा उपाय है? मुनिने कहा कि विष्णुकुमार मुनिको विक्रिया ऋद्धि उत्पन्न हुई है, वे यदि चाहें तो उस उपद्रवको समाप्त कर सकते हैं और जिस तरह कर सकते हैं वे अपने बुद्धिबलसे विचार लेंगे। तब यह पुष्पदन्त क्षुल्लक इनको विद्याविशेष सिद्ध थी, सो शीघ्र ही विष्णुकुमार मुनिराजके पास पहुंचे और विनती की कि महाराज ! अकम्पनाचार्य आदिक ७०० मुनियोंके संघपर ऐसी विपत्ति आई है और उसका उद्धार कर सकनेमें आप ही समर्थ हैं। उपद्रवको बात सुनकर विष्णुकुमार बोले कि वह कौनसा उपाय है ? तो पुष्पदन्त महाराजने कहा कि आप को विक्रिया ऋद्धि सिद्ध है। अब आप स्वयं विचार कर सकते कि कौनसा उपाय है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जिससे वे समस्त मुनि संकटसे बच सकते हैं। बलिने ७ दिनका राज्य मांगकर ब्राह्मणोंको दान देनेका बहाना रखकर लोगोंपर छाप डाल दिया और उस मुनिसंघ पर इतना बड़ा उपद्रव किया। तो विष्णुकुमार मुनिने पूछा कि हमको विक्रिया ऋद्धि भी सिद्ध है क्या ? बात यहां यही बतानी थी कि बड़े बड़े योगीश्वरोंको बड़ी बड़ी ऋद्धियां भी उत्पन्न हो जाती हैं पर उन्हें उनका पता नहीं रहता। आखिर विष्णु कुमारने परीक्षा करनेके लिये अपना हाथ बढ़ाना शुरू किया तो हाथ बढ़ता ही गया, अब क्या था, अति छोटा वामन शरीर धारणकर विष्णुकुमार मुनि बलिके पास पहुँचे और बोले —हमें भी कुछ दान दो ! बलिने कहा —जो चाहो सो मांगलो। तो विष्णुकुमारने कहा कि हमें तो ३ पग भूमि चाहिये और कुछ भी न चाहिये··· नहीं, नहीं और कुछ मांगो. तीन पग भूमिसे क्या होगा ? तुम वैसे ही नाटे कदके हो ! तो विष्णुकुमारने कहा —नहीं, हमें और कुछ न चाहिये ! तो बलि बोला — अच्छा, तीन पग भूमि नापलो। विष्णुकुमार मुनिने विक्रियाऋद्धिसे अपने शरीरको इतना बड़ा बना लिया कि दो पगमें ही सारे मनुष्य लोकको नाप लिया, तीसरे पगके लिए उन्हें जगह ही न मिली। यह दृश्य देखकर बड़ा हाहाकार मच गया। बलिसे विष्णुकुमारने तीसरा पग धरनेके लिये जगह मांगी तो वह बलि क्षमा मांगता हुआ कहता है—महाराज ! तीसरा पग धरनेके लिये हमारी पीठ है। क्षमा करो ! आखिर जैसा विष्णुकुमारने कहा वैसा बलिको करना पड़ा। इस तरहसे उन ७०० मुनियोंका उपसर्ग दूर हुआ। तो मूल बात यह बतानी थी कि बहुतसे योगीश्वरोंको बड़ा अतिशय ऋद्धिका प्राप्त हो जाता है फिर भी वे उसका ध्यान भी नहीं करते, अपने विद्याविशेषका उपयोग नहीं करते। फिर जो परमात्मा हो गए उनमें विद्या विशेषका उपयोग करनेकी बात थोपना यह तो असङ्गत बात है। यदि वे प्रभु ऐसा करने लगें तो फिर उनमें निर्ग्रन्थता कहां रही ? प्रभुपने की बात तो दूर जाने दो।

सकल परमात्माको अदृश्य होनेकी अनावश्यकता अच्छा, अब एक बात और बतलावो कि ये प्रभु तो अदृश्य हैं किसीको दिखते नहीं हैं तो ऐसे प्रभुको आहारदाता आहार कैसे दे पाता होगा ? जब कोई दिखता ही नहीं तो वह आहार किसे दे ? तो यह बात कहना युक्त नहीं है कि भोजन करते हुएमें भगवान दूसरेकी आँखोंसे नहीं दिखते हैं। यदि कहो कि प्रभुका ऐसा अतिशय विशेष है, उसमें विकल्प क्या उठाते हो, क्यों नहीं दिखते, क्यों नहीं दिखते, अरे प्रभुके ऐसा अतिशय है कि वे भोजन करने जाते हैं फिर भी दिखाई नहीं देते। तो ऐसा ही अतिशय यहाँ तुम क्यों नहीं विशुद्ध मानलो कि प्रभुमें भोजनका अभाव है। वे कवलाहार नहीं करते। अन्य अन्य अभिप्राय लेकर प्रभुमें कवलाहार सिद्ध करना और उनकी प्रभुताकी लाज रखने की कोशिश भी करना यह बात सिद्ध नहीं हो सकती है। प्रभु हैं परमात्मा। तीनों लोकके जीवों अधिपतिके हैं। वे क्षुधा तृष्णा आदिक समस्त दोषोंसे रहित हैं, ऐसा परमात्माका स्वरूप है और यही परमात्म स्वरूप हम सब उपासकोंके लिए ध्येय है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परमपवित्र आदर्श ध्येय सकल परमात्माके कबलाहारकी असंभवता — देखो हम आप लोगोंके मन तो है ही और यह कहीं न कहीं लगता है, इस मनके लगानेका ही नाम भक्ति है। भजन करना और सेवन करना एकार्थक हैं। पर भजन करना यह शब्द सभीको अच्छा लगता है, सेवन करना यह शब्द किसीको नहीं अच्छा लगता, पर हैं दोनों एकार्थक शब्द। भगवानके ज्ञानानन्दादिक गुणोंके समान ही जो अपना स्वरूप है उस स्वरूपको उपयोगमें लेना उस स्वरूपका इस्तेमाल करना, उसे व्यवहारमें लेना, तन्मात्र अपना आचरण करनेका प्रयास करना यही तो भगवानका सेवन है। तो उस प्रभुका ध्यान करके भक्तजन करते क्या हैं ? उनका उद्देश्य क्या है ? उनका उद्देश्य मात्र एक ज्ञानानन्दका है। जीवनमें अनेक काम किए हैं। जीवन भर सांसारिक खूब विषय कषाय भोगे, अनेक प्रकारके सांसारिक मौज माने, सभी प्रकारके प्रयोग कर लिए, इसलिए कि हमें सुख मिलेगा, मगर उन सब प्रयोगों से इस जीवको अभी तक सुख न मिला क्योंकि सुख मिला होता तो फिर दुःखी होने की जरूरत क्या थी ? इस दुःखकी ही परम्परामें पड़ा हुआ यह जीव जन्ममरणके घोर दुःखमयी चक्कर लगाता हुआ अपनेको सदा बरबाद ही करता रहा। इस जीवने अभी तक लाभकी कुछ भी बात न पाई। हम अभी अपनी असली दुनियामें नहीं आये हैं, बाहरी बाहरी दुनियामें ही हमने अपना उपयोग लगाया है। हम इस उपयोगसे हटकर अपने निजी स्वरूपकी अपनी दुनियामें आयें तो ऐसा पवित्र आनन्द प्रकट होगा कि जो मैल जो सकट इस जीवके साथ लगे हुए हैं वे समाप्त हो जायेंगे। ऐसा ही उपाय करके जिन्होंने घातिया कर्मोंका विनाश किया और अनन्त चतुष्टयस्वरूप पाया जिनका ज्ञान अनन्त है, जो कुछ भी सत् हैं, थे, और होंगे, वे सब उनके ज्ञानमें आये हैं। या यों कहो कि जो उनके ज्ञानमें नहीं है वह सत है ही नहीं। जो है वह सब ज्ञानमें आया। इतना जिनका विशाल ज्ञान और ऐसे विशाल ज्ञानका अवलोकन करने का दर्शन और सदा निराकुल रहे, भविष्यमें कभी भी उस स्वरूप विकाससे रंचमात्र की हानि नहीं हो सकती है, ऐसा जिनके अनन्त सामर्थ्य है, अनन्त आनन्द है, अनन्त चतुष्टय सम्पन्नता है ऐसे प्रभु तो कवलाहार रहित ही रहना चाहिए।

निरावरण विशद ज्ञानके सकल प्रत्यक्षत्वकी सिद्धि — यह प्रसङ्ग इस बात पर चला था, प्रकरण मूलमें यह था कि कोई प्रत्यक्ष ज्ञान होता है निरावरण। इसपर एकने शंका की कि निरावरण ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं होता। अनादिमुक्त ईश्वरका ज्ञान प्रत्यक्ष है। एकने कहा कि निरावरण ज्ञान तो होता है मगर प्रकृति ही सावरण थी, वही निरावरण हो गई, वही सर्वज्ञ भगवान है। इसके बाद श्वेतांबर सिद्धांतवादी कहते हैं कि तुम्हारी सब बातें ठीक हैं मगर प्रभुकी स्थिति भोजन किये बिना नहीं रह सकती। सो इन्हें भोजनकी सुधि आई और प्रभुमें भोजनकी सिद्धि करनी चाही, मगर कवलाहार प्रभुमें सम्भव हो ही नहीं सकता। वह प्रभु अन्तरङ्ग बहिरङ्ग समस्त दोषोंसे रहित है। ऐसे समस्त दोषोंसे रहित जो सकल परमात्मा है वह प्रत्यक्ष ज्ञानी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है। उनपर घातिया कर्मोंका आवरण नहीं रहा। उनका ध्यान करनेसे हमें अपनी शान्तिका मार्ग मिलता है। और जब तक राग है, संसार है तब तक ऐसा पुण्यवर्द्धन मिलता है कि इनको यहां भी समृद्धियाँ प्राप्त होती हैं और अन्तमें सबका परित्याग करके निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं। इसलिए हमें इन प्रभुकी भक्ति करना योग्य है।

जीवका अनादिमुक्त स्थान—इस जीवका आदिस्थान निगोद है। इस जीवके चिरकाल बसे रहनेके घर बताये जा रहे हैं। जीव चिरकाल तक जिस घरमें रह सकता है, रहता है और रहेगा वे दो हैं—एक तो निगोद और दूसरा मोक्ष। तो यह जीव अनादिसे निगोदमें बसता चला आया था। जहां बहुत छोटा शरीर, एक शरीरके अनन्त जीव धनी, एक श्वाँस ले तो सबका श्वास हो, और लब्धपर्याप्तक होने से श्वांसकी बात हो नहीं है। एक श्वांसमें १८ बार जन्म मरण हो, अर्थात एक सेकेण्डमें करीब २३ बार जन्मते और मरते हैं। जहां जन्म लेना, मरण करना, आयु का क्षय होना, नई आयुका भोगना फिर उसका क्षय होना यही निरन्तर जिनका काम है। केवल स्पर्शन इन्द्रिय द्वारा बहुत तुच्छ जिनका ज्ञान है, जो सदा आकुलताओंमें ही निरन्तर पड़े रहा करते हैं जिनकी आकुलताओंका व्यक्त रूप भी हम आप जैसा नहीं बन पाता और जैसे भीतर धधकती आग है, ऊपर पता नहीं पर भीतर जल भुन रहे हैं यों ही वे निगोदिया जीव आकुलित रहते हैं।

एकेन्द्रियके भवोंमें भी तुच्छता—उस निगोदभवसे निकलनेका क्या उपाय रचे ? जब सुभवितव्यतासे स्वयं ही परिणामोंमें यथानुरूप मंदता आती है। किसी प्रकारका कोई शुभ भावसा बना, कुछ बना तो यहां वहांसे निकलते हैं पर निकलकर यदि पृथ्वी बने, आग, हवा, पेड़ इनमें ही रमा, इनमें ही जन्म लिया तो निगोदसे कुछ तो अच्छा हो गया। लेकिन एकेन्द्रियके जालसे छुटकारा तो नहीं मिला, इसमें भी कितना दुःख है। पृथ्वीको खोदलो, काटलो तो क्या पृथ्वीके जीव बाधित नहीं होंगे ? पानीको गर्म किया जाता, आगको बुझा दिया जाता, हवाको रबड़में रोक लिया जाता, पेड़ोंको छिन्न भिन्न कर दिया जाता तो क्या यह उनपर क्लेश नहीं ? ये तो परघातजन्य बातें हैं पर स्वय अपने आपमें जो निरन्तर आकुलता बनी रहती है वह तो है ही।

इन्द्रियादि असञ्ज्ञी भवोंमें भी हितदर्शनकी असंभवता—एकेन्द्रियसे निकले तो दो इन्द्रिय जीव हुये। इतना विकास हुआ कि अब रसना इन्द्रियसे भी यह जोव ज्ञान करने लगे। जैसे लट, केंचुवा, जोंक इनमें जरा ज्ञान और बढ़ गया। अब उसमें रसना इन्द्रियके द्वारा कैसा ज्ञान बढ़ा सो हम सब उसमें समझ बनायें तो वह तुच्छ लगता है। वहांसे तीन इन्द्रिय जीव हुए, तो इस जीवमें सिर्फ इतना ही और विकास हुआ कि घ्राण इन्द्रियके द्वारा भी ज्ञान करने लगे, जैसे चींटी कीड़ी आदि।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ये गंधका भी ज्ञान करते हैं और जो इष्ट गंध हैं उन्हें पहिचान जाते हैं । इससे कुछ और विकास हुआ तो चार इन्द्रिय जीव हुए। ये उड़ने वाले' कई पैरों वाले जो जीव नजर आते हैं वे चार इंद्रिय जीव हैं। जैसे भँवरा, मच्छर, टिड्डी आदि। इनको चक्षु इंद्रिय प्राप्त हो जाती है तो इनमें रूपका ज्ञान करनेकी भी थोड़ी सामर्थ्य आ जाती है। इससे और विकास हुआ तो पंचेन्द्रिय जीव हुये। अब कानोंके द्वारा भी कुछ ज्ञान करनेका विकास हो गया लेकिन मन न मिलनेसे वहाँ भी अहितसे बचने व हितके मार्ग में लगनेका पुरुषार्थ नहीं चल सकता।

संज्ञी पञ्चेन्द्रिय होनेपर भी हितका अप्रयास और संसारभ्रमणकी असमाप्ति—पञ्चेन्द्रिय भी हो जायें और मन मिले, इतना होनेपर भी यदि पशु रहे, सिंहादिक क्रूर जानवर रहे तो पापकर्मोंको करके ही अपना अनर्थ कर लेते हैं। नारकी बने तो वहां भी क्लेश भोगते हैं। मनुष्य बने तो यहाँ भी यदि विषय कषायोंमें ही रमकर जीवन खो दिया तो उससे लाभ क्या पाया ? मनुष्य होनेमें और पशु पक्षी होनेमें फिर तो कोई अन्तरकी बात न रहीं। कदाचित मरकर देव हुए तो वहां भी विषयोंमें रमकर दूसरोंके सुख साधन देखकर, दूसरोंके वैभवको निरखकर अन्दर ही अन्दर जल भुनकर जीवन खो दिया, तो उसमें भी कोई लाभकी बात न मिली। ऐसी यह संसारकी भटकना चल रही है।

संसार परिभ्रमणका कारण—संसारकी भटकनाका कारण है मिथ्या श्रद्धान, मिथ्याज्ञान और मिथ्या आचरण। जो चीजें अपनी नहीं उन्हें मान लिया कि ये मेरी हैं, घर, धन, सम्पदा, परिवार, ठाटबाट, इज्जत, सम्मान आदिक ये सब इससे भिन्न चीजें हैं, पर इन्हें मान लेते हैं कि सब मेरी चीजे हैं, यही तो मिथ्याश्रद्धान है। जैसे सबका संकोच करके थोड़े शब्दोंमें कहा जाय तो यही कि पर्याय बुद्धिपना है जो पर्याय मिली उसीको मान लिया कि यह ही मैं हूँ। यह मिथ्या श्रद्धान लदा हुआ है और इसी मिथ्या श्रदानके विस्तारमें यों अनेक अनुभव चल रहे हैं। शरीर उत्पन्न हुआ तो इसने समझ लिया कि मैं उत्पन्न हो गया। शरीरका वियोग हो गया तो इसने समझ लिया कि मैं उत्पन्न हो गया। शरीरका वियोग हो गया तो इसने समझ लिया कि मैं मर गया। जो काम अच्छे हैं, ज्ञान और वैराग्यके हैं उनकी ओर तो रुचि नहीं जगती, उन्हें तो दुःखका कारण माना। अरे कहाँ फस गए, आज तो पंडितोंके चक्कर में पड़ गए। अब यहाँ इस ज्ञानसभासे इस ज्ञानचर्याके बीचमेंसे कैसे भागा जाय ? कुछ कष्ट सा अनुभव करते। प्रथम तो इस ओर आते ही नहीं हैं। सम्वेगकी बातें भी नहीं रुचतीं। भला जिस आत्माका निराहार स्वभाव है, निःशरीर रहनेमें ही जिस आत्माकी भलाई है, यह कल्याणकी अन्तिम अवस्था है। उसे भूलकर उत्साहहीन, कायर हो रहे हैं। अगर बात आये कि रातको न खावो तो बड़ा बोझ सा लगता, बुरा सा लगता। भला इन २४ घंटोंमें मनुष्यताके नाते दिनमें ही एक दो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बार खा लिया तो इससे स्वास्थ्य बिगड़ता है कि सुधरता है ? बीमार होनेपर डाक्टर लोग खाना खानेके लिए बताते हैं कि छोड़नेके लिए ? खाना छोड़नेके लिए बताते हैं। तो यह तो केवल स्वच्छन्दताकी मनकी प्रवृत्ति है जो कि जरा भी संयमको चित्त नहीं चाहता, और रागभाव स्नेहभाव जो अहितरूप हैं उनकी बात आये तो मन प्रफुल्लित हो जाता है। अभी कोई सिनेमाका प्रोग्राम बन जाय तो देखो कितना हर्षित होकर कितने उमङ्गसे उस प्रोग्राममें आते हैं। तो जीवोंको विषयोंका संस्कार बनानेमें ज्ञान और वैराग्यकी बात तो रुचती नहीं और रागकी बात रुचती है, धनकी बात रुचती है उसकी कभी बाट नहीं जोहते। जो आत्माकी अन्तिम पावन कल्याण की अवस्था है। मैं कब ऐसा समय पाऊं. समस्त सम्पर्कोंसे रहित होकर केवल आत्मा ही आत्मा रह जाऊ, ऐसी बात मनमें कहां आती ? स्वप्नसम मायावी दुनियामें इस कल्पित पर्यायकी यशकी ठान रखी है दुनियामें मेरा नाम हो, विषयोंके भरपूर साधन मिलें। विषयोंमेंसे रुचनेकी जिन्होंने अपनी प्रवृत्ति की है उन्हें इन विषविषोंका ही पान करना रुच रहा है। कुछ तात्कालिक मधुर होनेके कारण उन्हें मोक्षको प्रतीक्षा करनेकी बात कैसे आ सकती है। यों मिथ्या ही श्रद्धा है और ऐसा ही अपना उपयोग बनाये रहते हैं और विषय-कषायोंका ही आचरण कर रहे हैं इससे संसारमें इतना परिभ्रमण कर रहे हैं।

संसारसङ्कटोंसे मुक्त होनेके मार्गका दर्शन कदाचित किसी जीवको कुछ ज्ञानावरणके क्षयोपशमसे मंदकषायके अवसरसे कुछ लाभ उठानेकी बात आये और कुछ आत्महितकी रुचि जगे तो वह वस्तुस्वरूपके यथार्थ जाननेका अभ्यास रखता है और ऐसा ही अपने ज्ञानको बनाता है, परसे उपेक्षा करके एक इस निज केवल ज्ञान आनन्दस्वरूप अपने आपमें ठहरनेकी सोचता है, उद्यम करता है और इस यत्नमें जब कभी ज्ञानके द्वारा इस ज्ञानस्वरूपकी अनुभूति हुई तब यह जानता है—अहो मेरा सर्वस्व तो यह है और ये सारे समागम सम्पर्क तो अहितरूप ही हैं। ऐसे अन्तः यत्न-शील आत्माको सम्यक्त्व उत्पन्न होता है। सम्यक्त्वके समान इस जीवको कुछ भी हितकर नहीं है। जीवको सम्यक्त्व हो अर्थात् इस शरीर तकसे भी निराला केवलज्ञान ज्योतिमात्र आनन्द भरपूर अपने आपके सर्वस्व स्वरूपरूप इस अंतस्तत्त्वका भान हो तो इस जीवको संसारसे छूटनेका मार्ग मिलता है।

ज्ञानी संतका संवेगपरक तत्त्वचिन्तन—यह अन्तस्तत्त्वका रुचिया ज्ञानी संत अपनेमें तत्त्वचिन्तन करता है। जगतके समस्त पदार्थोंका समागम अहित है, विनाशक है, ये सम्पर्क सदा नहीं रह सकते हैं पर मेरे आत्माके इस स्वरूपका सम्बन्ध तो जो स्वयं आनन्दमय है निरन्तर रहा करता है। इस जगतमें मेरे को मेरे सिवाय अन्य कुछ शरण नहीं है, बल्कि परको शरण माननेकी दृष्टि करनेसे मैं अपने स्वरूप-दृष्टिसे दूर हो गया, रीता हो गया, तो अशरण बन गया, परको शरण माननेकी बुद्धि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

में यह मैं अशरण हो जाता हूँ। इस मेरेका मेरे सिवाय और कोई शरण नहीं। इस मेरेका केवल यह मैं ही ज्ञानस्वरूप शरण हूँ। वही स्वाभाविक आनन्द है। संसार के इन रागादिक भावोंमें तो दुःख ही दुःख है। इन सब दुःखोंका करने वाला और दुःखोंसे छूटनेका उपाय बनाने वाला और दुःखोंसे छूट सकने वाला यह मैं सर्वत्र अकेला ही तो रहा करता हूँ। अकेला ही संसारमें रुलता हूँ, अकेला ही संसारसे छूट कर मुक्त होकर अपने आपमें समृद्धिका अनुभव करता हूं। मेरा मेरे सिवाय अन्य कुछ मेरा नहीं है। यह मैं स्वयं पवित्र हूँ। उस ज्ञानस्वरूपमें अपवित्रताका कहां अवसर है। मोही पुरुष जिस शरीरमें आसक्त हो रहे हैं, दृष्टि बना रहे हैं यह शरीर भीतरसे ऊपर तक सर्वत्र गंदा है, अशुचि है, अत्यन्त अपवित्र है। मनुष्यका यह अशुचि शरीर तो इससे वैराग्य बनाकर विरक्त रहकर आत्मसाधना करके मोक्षका उपाय बनानेके लिए मानो मिला है। देखो, तो जब इतना गंदा शरीर मिला इसपर तो मोही इतराते हैं, यदि यह कुछ देवोंके शरीरकी भाँति भला सा मिल जाता, गंदगी न होती तब तो न जाने ये जीव कितना इस शरीरमें रम जाते। तो यह शरीर मिला है विरक्त रहनेके लिए किन्तु मोही जीव विष्टाके कीड़ाकी भाँति इसी अपवित्र शरीर में रमते हैं। इससे इस आत्माका कुछ भी हित नहीं है। अपने आपके पवित्र ज्ञानानन्दस्वरूपको निहारनेमें ही कल्याण है। इस ही वृत्तिसे कर्म रुकेंगे। कर्मोंका बन्ध कटेगा और यह लोकभ्रमण मिटेगा। ऐसा महा दुर्लभ यह रत्नत्रय इस जीवको जब प्राप्त होता है, जब यह जीव धर्ममें आता है तब समस्त संसार शरीर भोगोंसे परिग्रहों से आरम्भोंमें विरक्त होकर निर्ग्रन्थ होकर केवल आत्माकी साधनामें रहा करता है।

साधु संतों द्वारा ज्ञानघन अन्तस्तत्त्वकी साधना—तत्वज्ञ साधुजन अपने आत्मसिद्धिकी धुनमें कहाँ रहते हैं ? गुफामें, बनमें। ककरीली जमीनमें पड़े रहते हैं। बाह्य दुःखोंकी ओर कुछ भी ध्यान नहीं है। शरीरके आरामकी तरफ उनका कोई ख्याल नहीं है। केवल एक इस जीवनको रखनेके लिए जिसमें कि संयमकी साधना करना है। जब कभी क्षुधाको वेदना होती है तो शरीरकी, प्राणकी रक्षाके लिए योग्य विधिसे आहारचर्यासे भोजन ले आते हैं। मैंने तुझे खिलाया, अब तुझसे काम लूंगा, बस ज्ञानमें, ध्यानमें, स्वाध्यायमें, इनमें अपने आपके चित्तको लगाना है। और, विषय कषायोंसे विरक्ति बढ़ानेके अर्थ अनेक प्रकारके तपश्चरणोंमें लगाना, इस प्रकार अनेक यत्नोंसे साधुजन एक इस आत्माकी ही साधना करते हैं, जो आत्मा ज्ञानमय है. जिस ज्ञानकी यहां चर्चा चल रही है।

ज्ञानी निर्ग्रन्थ संतोंकी विशुद्धिवृद्धि—ज्ञान कहो, प्रमाण कहो। प्रमाण का स्वरूप बताया जा रहा है, प्रमाणके भेद बताये जा रहे हैं और इस प्रमाणमें प्रत्यक्ष प्रमाणकी चर्चा चल रही है। जिस ज्ञानमें ये सब विकास है इन सब विकासों में स्रोतभूत जो अपने आपमें सहज ज्ञानस्वभाव है उसकी उपासनामें साधुजन रहा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

करते हैं। तो जब इस ज्ञानस्वभावकी आराधनामें रह रहकर साधुजन इसपर अपना अधिकार पा लेते हैं और ऐसा अधिकार पा लेते हैं कि जैसे गृहस्थको धनीजनोंको अपने खाने पीने आदिकका साधन सुलभ है। जब चाहा तब खाया, जब चाहा तब लेटा, जब प्यास लगी तभी झट टोटी खोला और उस कल्पवृक्षसे पानी झरने लगा, जैसे चाहे सुखके साधन पड़े हैं, मन आया तो भोग लिया। देखो, इसमें अब भी पराधीनता है, विलम्ब लगता है, लेकिन साधु पुरुष जो कि आत्मसाधनामें अभ्यस्त हैं उन्हें विलम्ब नहीं लगता। जब दृष्टि दी, जब ही भीतरमें निहारा तभी वह परमात्मतत्त्व समक्ष है।

साधु संतोंकी अप्रमत्तता और वीतरागताप्राप्ति—कारणपरमात्मतत्त्वकी आराधनाके अभ्यस्त साधुजन अब प्रमाद अवस्थाको छोड़कर अप्रमत्त होते हैं, निर्विकल्प समाधिमें आते हैं. अब बुद्धिपूर्वक रागादिकका अंश भी नहीं रहता है। साधुअवस्थामें भी समाजके शिक्षणमें, सम्बोधनेमें कुछ विकल्प भी उठते हैं, राग भी सताते हैं पर बीच-बीच उनसे छूटकर वे अप्रमत्त ज्ञानस्वरूपका ध्यान भी करते हैं, लेकिन अब इस ज्ञानस्वभावके निरन्तर आराधनके बलसे ऐसा विकास हुआ है कि अब वे निर्विकल्प समाधिमें आ गये। राग भी अब नहीं सता रहा और अबुद्धिपूर्वक जो रागद्वेषकर्म बंध गये थे वे भी सब निर्जराको प्राप्त हो रहे हैं। होते-होते इस निर्विकल्प समाधिके बलसे ही एक अवस्था ऐसी आती है कि जहां समस्त मोहनीयकर्म दूर हो जाते हैं, वीतराग हो जाते हैं, रागद्वेष रंच नहीं रहते, इतने पर भी जब तक (अन्तर्मुहूर्तमात्र) केवलज्ञान नहीं होता, उसे कहते हैं १२ गुणस्थान, क्षीणमोह। १०वें गुणस्थानके अन्तमें रचमात्र भी जो लोभ था उस सबका भी क्षय हो गया, और अब क्षपक श्रेणीमें १०वें गुणस्थानसे ११वें में आये. वीतराग हो गए, पवित्र हो गए। अब यह इस वीतरागतामें छोटे ही अन्तर्मुहूर्तमें रहकर केवलज्ञान उत्पन्न कर लेता है।

वीतराग आत्माके अनन्त चतुष्टयका लाभ—जब केवलज्ञान हुआ, कैसे हुआ? बाहरी बात तो यों ही है कि समस्त ज्ञानावरणका क्षय होनेसे हुआ, ज्ञानावरणके क्षयका निमित्त पाकर यह केवलज्ञान प्रकट हुआ। तो यह केवलज्ञान निरावरण है। इसमें कोई आवरण नहीं है, विशद है। जगतमें जो भी सत् हैं वे सब एक साथ ज्ञात हो रहे, ऐसा सम्पूर्णरूपसे विशद निरावरण ज्ञान सकल प्रत्यक्ष कहलाता है। ऐसा केवलज्ञान जहां प्रकट हुआ है, उसके ही साथ साथ केवलदर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त शक्ति प्रकट हुई है, उसे कहते हैं अनन्त चतुष्टय। चतुष्टय मायने चौकड़ी कोई चौकड़ी खराब होती है कोई भली। जब चार बच्चे जुड़ते हैं तो लोग कहते हैं कि इस चौकड़ीमें पड़कर यह बच्चा खराब हो गया और जब चार समझदार आदमी जुड़ते हैं तो लोग कहते हैं कि इस चौकड़ीने भला निर्णय विचारा। तो यहां नारक,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तिर्यञ्च, मनुष्य, देव आदि चार गतियोंकी चौकड़ी है जिनमें संसार परिभ्रमण चल रहा है, और यहाँके अनन्त चतुष्टयकी चौकड़ी देखिये। प्रभुके प्रभुता प्राप्त हुई है, इन्हें अनन्त चतुष्टयका लाभ हो गया है, अब इससे आगे और क्या चाहिये। उन प्रभुका शरीर अभी और छूटना शेष रह गया है। शरीर छूटनेपर वे सिद्ध होंगे। वहाँ भी वे प्रभु अनन्त चतुष्टय सम्पन्न हैं। यही तो मोक्ष कहलाता है। अब इसके आगे क्या आवश्यकता रही?

सांसारिक कल्पित वैभवोंके लाभमें आत्माका अलाभ --भैया! सोचिए कौन सा काम इस जीवको करना अब शेष रहा? यहां तो संसार अवस्थामें किसी भी भवमें हों एक न एक आगे काम पड़ा हुआ है। वे काम पूरे होते ही नहीं। अब सभी लोग अपनी अपनी स्थिति देख लो। गृहस्थीके काम ये कभी पूरे ही नहीं हो पा रहे। खूब धन जोड़ लिया, मानो इतना धन जोड़ लिया कि केवल ब्याज ब्याजसे ही सारा खर्च चल रहा है अब कुछ चिन्ता न रहना चाहिए फिर भी उस धनके रक्षण सम्बन्धी, उस धनकी सम्हाल सम्बन्धी विकल्पोंमें व सुख माननेके समय ऊधमके विकल्पोंमें इतना अधिक बढ़ गये कि उन्हें अब प्रभुस्मरणके लिए भी एक मिनटकी फुरसत नहीं। जब गरीबीकी हालतमें थे, कुछ दुःखमय जीवन बीतता था उस समय तो कभी कभी प्रभुका स्मरण भी हो जाता था पर अब धनिक बन जानेपर प्रभुभक्ति के लिए अवकाश ही नहीं रहा। पहिले तो विनयगुण भी था, दूसरोंका सम्मान भी करते थे, कुछ धर्मकी बात भी याद आती थी पर अब धनिक बन जानेपर तो ये सभी बातें गायब हो गयी हैं। एक बहुत बड़ा विकल्पोंकी दुनियामें पहुँच गए हैं। विपत्ति ही तो विपदा है विपत्ति और किसका नाम है?

विकल्प विपदायें और उनके अभावका अमोघ यत्न --भैया! प्रत्येक घटनामें आप निर्णय कर लो कोई मकान गिर गया, बिजली तड़क गई, भूकम्प आ गया, हवेलियां गिर गयीं, वहां भी यह जीव बड़ा दुःख मचाता है पर जरा सोचो तो सही कि उससे इस आत्मामें कौनसी दुःखकी बात आ गई? केवल वहां विकल्प मचा कर ही तो दुःख बना लिए गए हैं। कहीं ऐसा तो नहीं है कि इस आत्माके अन्दर वह भूकम्प पहुंच गया हो। यों ही किसी इष्टका वियोग हो गया तो उस इष्टके वियोग से इस आत्मामें कोई दुःखकी चीज नहीं आई, फिर भी यह जीव विकल्प मचाकर दुःखी हो जाता है। अरे इस इष्टसे न पहिले ही इस जीवका कुछ सम्बन्ध था और न वियोग होते समय कुछ सम्बन्ध है फिर भी यह जीव उस इष्टके प्रति विकल्प मचाता है और अपनेको हैरान कर डालता है। यह जीव संयोगके कालमें भी विकल्पोंसे ही हैरान हो रहा था, और वियोगके कालमें भी इन विकल्पोंसे हैरान होता है। एक विकल्पोंका रङ्ग बदला, पर इस आत्माका अनर्थ कुछ नहीं हुआ। अनर्थ पहिले भी था अब भी है। कुछ ऐसा नहीं कि पहिले अनर्थोंसे बचे हुए थे और अब अनर्थ आ

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

गये। तब फिर इस दुःखको मेटनेके लिए ऐसा ही तो यत्न करना होगा कि जिस यत्नके द्वारा हम विकल्पोंसे ये विकल्प मिटें। बस एक ही निर्णय है। उसी यत्नसे हम सुखी हो सकते हैं। जिस यत्नके द्वारा हम विकल्पोंसे दूर हों वह कौनसा हो सकता है? धन वैभव बढ़ा लेना, यह तो शान्तिका यत्न नहीं हो सकता। सिर्फ एक सम्यग्ज्ञानका ही यत्न है ऐसा कि जिसके बलसे विकल्प दूर हो सकते हैं। जहां वस्तुका स्वातंत्र्य अनुभवमें आया, प्रतीतिमें आया वहाँ सब विकल्प दूर होते हैं।

अनन्त चतुष्टयस्वरूपलाभरूप मोक्षके लक्षणमें विशेषवादकी एक आशंका—इस सहज ज्ञानके उपयोगकी स्थिरताके बलसे निर्विकल्प समाधिको उत्पन्न करके साधुजनोंने अनन्त चतुष्टयका लाभ लिया है और फिर शरीररहित होकर वे आत्मसिद्ध हो गए तो वहां भी अनन्त चतुष्टयके स्वरूपका लाभ है। इस हीका नाम मोक्ष है। इस प्रकरणमें एक शङ्काकार यहां कहेगा कि मोक्षका स्वरूप बनाना कि अनन्त चतुष्टय स्वरूपका लाभ होना सो यह अयुक्त बात है। यह शङ्काकार विशेष-विशेषवादी है जिसका यह हठ है कि किसी भी वस्तुमें कुछ भी विलक्षणता समझमें आये तो, झट उसे न्यारा सत्त्व बना दो कि यह न्यारी चीज है। और इसी हठके अनुसार जब इसने अपनी बुद्धिके द्वारा निरखा कि इतने विकल्प किए जा रहे हैं तो यही तो ज्ञान है जब यह ज्ञान मिटे तब मोक्ष होगा। ज्ञान अलग चीज है, आत्मा अलग चीज है। इस ज्ञानका लक्षण केवल जानना है और आत्माका लक्षण चित्स्वरूप मात्र है। लक्षणका भेद है, ज्ञान जुदा है, आत्मा जुदा है। तब फिर जब ज्ञान मिटता है तब मोक्ष होता है कि जब ज्ञान मिलता है तब मोक्ष होता है? यह समस्या उस विशेषवादीके सामने थी। तो उसने यही निर्णय किया कि जब ज्ञान मिटता है तब मोक्ष होता है ऐसी आशंका रखने वाला विशेषवादी यह शङ्का करेगा कि अनन्त चतुष्टयके स्वरूपके लाभका नाम मोक्ष है यह बात अयुक्त है, किन्तु ज्ञानादिक गुण जो आत्मामें घर कर रहे हैं इनका विनाश हो जाय इसका नाम मोक्ष है। अब शंकाकार इस हीकी पुष्टिमें अपने प्रमाण देगा। कुछ समय तक शंका चलेगी। इसके बाद उसका उत्तर होगा।

卐

Report any errors at vikasnd@gmail.com